करते। कोई लड़का 'घर वाला' बनकर बाहर खेतों को जाने का स्वांग करता। कोई लड़की दाई बनकर दूसरी लड़की का पेट मलती। अचरज की यह लीला सांझ के कमरा की देन थी। इन्हीं अपने कमरे मे। जहां हम निःशंक होकर नग्न खेल खेला करते थे।

गांव अदलीवाला। सारे परिवार का एक ही कमरा। आगे आंगन में रसोई। आंगन में ही एक कोने मे खाट खड़ी करके मां बहन नहा लेती थीं। यही कमरा था जहां मां पिता जी, बहन और बड़ी भाभी सोते थे। कभी बड़ी भाभी और भाई छत से खाट बांधकर बनाए गए परछत्ती-नुमा टांड पर सोते थे। उसी कमरे में सबके कपड़े रखे रहते थे। एक दिन बड़ी भाभी की अंगिया देखकर पूछा "इसे कैसे पहनते हैं ?" भाभी ने हंसते हुए मजाक भी लिया और गुस्से का मुंह बनाकर चपत भी मारा। पिता जी बहुत रात गए शहर से लौटते थे। बहन आधी-आधी रात तक कविता में लिखी हुई रामायण की कहानी सुनाती रहती थी। सीता और मंदोदरी के विलाप से कमरा उदासी की तस्वीर बना रहता था। मां गहरी आह भरती रहती जिनकी गहरी पीड़ा आज भी मेरे अन्दर रची हुई है।

१९४७ से कोई एक बरस पहले गांव छोड़कर शहर आना पड़ा। सारे घर के लिये एक ही कमरा। दोनों बहन भाइयों के लिये पढ़ने का एक ही लैम्प की रोशनी। मौसी का लड़का बहन को पढ़ाने आता था। मां मुझसे भी उससे कुछ सीख लेने के लिये कहती पर मैं उसमें कुछ नहीं सीख सका। किताब भले ही मेरे सामने होती, पर ध्यान भाई की ओर होता था जिसका हाथ कापी की बजाय पैंट के बटनों पर रहता था। रिश्तेदारियों

से मेरी नफरत का आरभ यही से हाता है। १९४७ के फिसादा मे हमारी भरी भराई दूकान जलकर राख हा गई। घर की रोटी सब्जी बेचकर चलन लगी। सारा कमरा सब्जी की उमस से भरा रहता। बाप ने स्पिरिट नुमा शराब पीनी शुरू कर दी और मा के मन मे इक्कीस बरस के लटठ जैसे जवान पुत्र की मौत फिर ताजा होन लगी जा एक हफ्ते बीमार रहने के बाद ठीक उस दिन चला गया जिसदिन उसकी शादी थी। और मेरा कमरा मदमे का रूप बन गया। फिर एक दिन ऐसा भी हुआ— रात का घना अधेरा था। मैं खेल कर लौटा था। आगन म दिया जल रहा था पर नजर कोई नही आ रहा था। सीधा कमरे मे गया। अ दर कोई से दो जनो को एक दूसरे से परे सरकते देखा मा तो एक दम बाहर आ गई, पर बाप नशे मे धुत नाडा बाधने के योग्य भी नही था। कही कोई मेरा कमरा होता ता मैं सीधा वही जाता। बेपद मा बाप को देखकर उस दिन तो शम से काप उठा ही था, आज भी उस दिन को याद करके अपन कमर से वही बेगानगी पैदा होती है। ऐसे कमरे मे कोई, अपन जसा क्या कर सकता है?

फिर मेरा कमरा इस बडे आगन वाले कमर की जगह एक म्यानी नुमा कमरे मे तबदील हो गया सिफ दा खाटा की जगह। दूसरी खाट सिफ सोते समय ही डाली जाती थी। इस म्यानी के नीचे मालिक मकान की दूकान थी। वह रात गए तक खाटो के पावे ठोकता रहता था जार जोर से शब्द भी पडता था। इस वकशाप की लय म मैं भी अपनी कविताए गढता था। यही मेरा पहला एम० ए० परवान चढा और यही पहले काव्य सग्रह सहकदा शहर' की योजना तयार हुई। मा देर

करते। कोई लडका 'घर वाला' बनकर बाहर खेता था जान का स्वाग करता। कोई लडकी दाई बनकर दूसरी लडकी का पट मलती। अचेत की यह लीला साझे के कमरा की देन थी। छतें ही 'अपने' कमर थे। जहा हम नि शक हाकर नगे खेल खेला करते थे।

गाव अदलीवाला। सार परिवार का एक ही कमरा। आग आगन में रसोई। आगन मे ही एक कोने मे खाट खडी करके मा बहन नहा लेती थी। यही कमरा था जहा मा पिता जी, बहन और बडी भाभी सोत थे। कभी बडी भाभी और भाई छत से खाट बाधकर बनाए गए परछत्ती नुमा टाड पर सात थे। उसी कमरे मे सबके कपडे रखे रहत थे। एक दिन बडी भाभी की अगिया देखकर पूछा "इसे कसे पहनते हैं ?' भाभी ने हसते हुए सवाद भी लिया और गुस्से का मुह बनाकर चपत भी मारा। पिता जी बहुत रात गए शहर से लौटते थे। बहन आधी-आधी रात तक कविता मे लिखी हुई रामायण की कहानी सुनाती रहती थी। सीता और मदादरी के विलाप से कमरा उदासी की तस्वीर बना रहता था। मा गहरी आह भरती रहती जिनकी गहरी पीडा आज भी मेरे अदर रची हुई है।

१९४७ से कोई एक बरस पहले गाव छोडकर शहर आना पडा। सारे घर के लिये एक ही कमरा। दोनो बहन भाइयो के लिये पढने को एक ही लैम्प की रोशनी। मौसी का लडका बहन को पढाने आता था। मा मुझमे भी उससे कुछ सीख लेन के लिये कहती पर मैं उससे कुछ नही सीख सका। किताब भले ही मर सामने होती, पर ध्यान भाई की ओर होता था जिसका हाथ कापी की बजाय पैट के बटना पर रहता था। रिश्तेदारिया

से मेरी नफरत का आरभ यही से होता है। १९४७ के फिसादो म हमारी-भरी भराई दूकान जलकर राख हो गई। घर की रोटी सब्जी बेचकर चलन लगी। मारा कमरा सब्जी की उमस स भरा रहता। बाप न स्पिरिट नुमा शराब पीनी शुरू कर दी और मा के मन म इक्कीस बरस के लट्ठ जैसे जवान पुत्र की मौत फिर ताजा होन लगी जो एक हफ्ते बीमार रहन के बाद ठीक उस दिन चला गया जिसदिन उसकी शादी थी। और मेरा कमरा मदम का रूप बन गया। फिर एक दिन ऐसा भी हुआ— रात का घना अधेरा था। मैं खेल कर लौटा था। आगन म दिया जल रहा था पर नजर कोई नही आ रहा था। सीधा कमरे म गया। अन्दर कोई से दो जनो को एक दूसरे से पर सरकते देखा मा तो एक दम बाहर आ गई, पर बाप नशे म धुत नाडा बाधने के योग्य भी नही था। कही कोई मेरा कमरा होता तो मैं सीधा वही जाता। बेपद मा बाप को देखकर उस दिन तो शर्म से काप उठा ही था, आज भी उस दिन को याद करके अपने कमरे से वही बेगानगी पैदा होती है। ऐसे कमरे म कोई, अपन जसा क्या कर सकता है ?

फिर मेरा कमरा इस बडे आगन वाले कमरे की जगह एक म्यानी नुमा कमरे मे तबदील हो गया सिर्फ दो खाटो की जगह। दूसरी खाट सिर्फ सोते समय ही डाली जाती थी। इस म्यानी के नीचे मालिक मकान की दूकान थी। वह रात गए तक खाटो के पावे ठोकता रहता था जोर-जोर से शब्द भी पडता था। इस वकनाप की लय म मैं भी अपनी कविताए गढता था। यही मेरा पहला एम० ए० परवान चढा और यही पहले काव्य सग्रह 'सहकदा शहर' की योजना तयार हुई। मा देर

रात तक सूत कातती रहती। पढने की खब्त तो साथ ले
ही पदा हुआ था। मां चर्खा कातते हुए विचारा मे
रहती और मैं किताबें पढता रहता। छुट्टी के दिन कभी
दिन ही बहुत पढने का जी करता तो कोई अडास पडास
औरत लम्बी कहानिया ले बैठती। यह कोई नयी मजबूरी
नही थी। मेरा माहौल मेरी आदत का ही जैसे हिस्सा बन
हो। जब भी मन उक्ताता गोर्की की वह मालकिन याद आ
जो उसके रात के समय बुर्जी पर बठकर पढने के लिय इक
किए हुए मोम के छोटे छोटे टुकडे भी छिपा दिया करती
ताकि उसका नौकर न पढ सके। और मैं फिर अपने कमरे
किस्मत को अपना बनाना शुरू कर देता। यह भी क्या मज
हुई कि कोई व्यक्ति अपने दोस्तो से भी घर पर न मिल स
हैरान हू कि आज तक 'अपने' कमरे के बारे मे कोई कवि
क्या नही लिख सका ! पर यह भी तो हो सकता है कि
कविता के पीछे किसी कमरे का एहसास हो।

अब जिस कमरे मे हम गए वह भी डयोढी और आगन
बाद पीछे का कमरा था। मैं, पिताजी और मा तीनो
कमरा। जहा मैंने बडे चाव स एक तस्वीर लगाई हुई थी। इ
चार चेहरे थे और इसका नाम था "आसू"। तीन चेहरो
कही भी आसू नजर नही आता था पर लगता था कि बस अ
कोई आसू टपका कि टपका। क्या यह चेहरे हम तीनो के चे
थ ? चौथा चेहरा आसू वाला था। तीनो चेहरो में से कब क
चौथा रूप धारण कर लेता था यह सिर्फ कमरा ही जान
है। इस दीवार पर एक और तस्वीर थी—खान अ दुरहम
चुगताई की गालिब के एक शेर की रगो मे पेशकारी—विना

बियावान मे एक पत्रहीन वृक्ष जिसके पास ही एक फूल मे दिया जलता हुआ दिखाया गया है। यह शायद मेरे कमरे की मान सिकता थी। जहा अपनी कविता की लौ से मेरा उदास कमरा जगमगाता रहता था। इसी कमरे मे पहली बार मेरी कविता की तरह ही 'वह' मेरे सासो मे घुल गई थी। इसी कमरे मे उस दिन लोग आए थे। और मुझे उसके साथ पहला और आखिरी फसला लेने के लिए कमरे की छत पर जाना पडा था। मैंने उससे कहा था "यह खेल मैं नही खेल सकूगा, तुम मेरे रास्ते मे न आओ।" पर उसकी बात सुनकर मैं एकाएक काप उठा था "अब तो बहुत दूर आ चुकी हू, लौटना अब मेरी होनी नही।" दस बरस के लम्बे समय तक वह मेरी दुनिया रगती रही, पर हर बार अपने कमरे का अनस्तित्व आख मे किरकिरी की तरह दडकता रहा। दस बरस तक हमारी मुहब्बत साइकिल की कोठो या सडका के कमरो मे ही बातें करती रही। कई बार जब वह गोरे रग से श्याम रग बदलने के लिये व्याकुल हो जाती तो सोचता किसी आदिम युग मे ही जी लेता कोई एकान्त गुफा तो नसीब हो जाती, जहा मैं किसी की सारी व्याकुलता सासो मे घाल लेता। इस कमरे मे मेरे कमरे की निशानी बस इतनी सी थी कि मेरी आम साइज से भरी खाटें, और पाच छह तकिए पडे होते जिन के साथ सहारा लगाकर मैं पढता लिखता था। कितनी बडी पहचान थी मेरे कमरे की ? यह पढना भी अजीब था। पिताजी ज्यादा नशा करने के कारण दिमाग का सतुलन खो बैठे थे और उनके स्वास्थ्य की सख्त देखभाल मेरा कर्त्तव्य बन गई। वह जल्दी ही सो जाते और इस हालत में पढना सभव न होता। उनकी बीमारी के लिये ज्यादा से ज्यादा नीद जरूरी

अस्तित्व म बावजूद भी प्यार करने की जाच विवाह के बाद ही आई। पर पढा की उम्र वाले फिर ी गरबडा मे धम का पालन करते रह । तृष्णा ऐसी हाती है जा सदा न हुग की ओर देखती है। ज्यो-ज्या इस पछाडा है त्या-त्या यह मुह-जोर आग ही आग बढी है। और मैंन भी कौन-सी कमी रखी है इन कमरा का सुपनो की बारादरिया की तरह भागा है। यही यारा का देख कर 'वाह सजन' कहा है और दास्ती की हीर को छाती स लगाया ह। जब भी कभी एक या दा दिना के लिय बाहर गया हू इन 'गुरु दरबार' जसा के पास झट स पहुचने के लिय व्याकुल हा उठा हू।। न हुओ का यह कैसा घर वैराग है ?

पाचवी जगह दो कमरा का खुला घर था। एक कमरा माता पिता के लिये और दूसरा मेरा और मरी पत्नी का। विवाह के बाद मेरे पास सोफे थे, सिगार मज थी और, और साज-सामान पर पर पढन वाला काना फिर वही मिया बीवी वाला डबल बैड। मैं लिखना चाहता, बीवी जल्दी सोन को प्रेरित करती। आखिर बीवी का गम जिस्म आखा मे उभरन लगता, और शब्दा के सितार बिल्लौरी शरीर के तिरमिर हा जात। कई बार दोस्त आधी-आधी रात तक कविता, कहानिया और चर्चा करत रहते और पत्नी दुखते हुए शरीर म बाहर दहलीज मे बैठी साने की घडिया गिनती रहती। इस तरह दाना ओर का कितना कुछ खा गया है, कम से कम मेरे लिये कुछ कहना ता वस के बाहर की बात है। इसी कमरे म अपने दो बच्चा के आगमन का स्वागत किया है। इस तरह इन कमरा का छाटा छाटा चाव, बे आरामी, शोर, अनिद्रा, इन्तजार और प्यास मेर अध्ययन और सजन से एक स्वर भी हैं' दो

धार भी। आखिर हम टेबू-समाज म जीते हैं, और कुछ इस तरह कि मैं भी सोचने लगता हू—सोचता हू कभी किसी की तसल्ली हुई भी है ? और फिर शाप्त म से ही रग बिरगी फुल-झडिया छूटते देखता हू—एक कमरा—अपनी आवश्यकताओ अभावो से भरा हुआ—कमर म

बच्चे पत्नी, मा, कविता यार, और मैं—

इन पत्तो मे सरसराती हवा की तरह बहना चाहता हू—।

इस आकाश गगा म रोशनी के घेरे की तरह फैलना चाहता हू।

इस धरती के चप्पे चप्पे से झरने की तरह फूटना चाहता हू

इस ममरी उजाले मे आग की लपट की तरह जलना चाहता हू

इनकी बौछार से सिर से पर तक सराबोर होना चाहता हू

जसबीर भुल्लर (१६४१)

पिथौरागढ म मेरा कमरा पत्थर का भी हो सकता था, पर पहाड के ढलान पर बना हुआ यह कमरा लकडी का है और मैंने दूर बाहर स दिख जाने के डर स कमरे मे कभी कोई दिया सलाई नही जलाई।

घाटी की ओर खुलने वाली खिडकी स लगा हुआ मेरा बिस्तर है। बिस्तर मे अधलेटे हुए मैं लिखता हू, अधलेटे पढता हू, और अधलेटे सोचता हू। खिडकी के बाहर घाटी मे सध्या के समय बादल इकट्ठे हो जाते हैं। इन बादलो मे टेढी मेढी लकीर सी तेज बहती नदी भी छिप जाती है और सीढिया जसे खेत भी। बादलो से आख मिचौली खेलती हुई पचचूली की बफ मे लदी ई चोटिया ऐसे समय पर बहुत से रग बदलती हैं। डूबते हुए सूरज की अन्तिम किरणो मे बफ का चेहरा गुलाबी हो जाता है और सूरज के आख मीचते ही बफ नीली पड जाती है।

चारपाई के साथ रखी हुई मेज पर बहुत बिखराव पडा रहता है—किताबें अव्यवस्थित पडे पत्र पत्रिकाए फाइलें, और कुछ लिखे और कुछ अनलिखे कागज। मेरा बैटमैन गुरु नाम

म मज का मलीके से रचन का जतन करता रहा, पर अब उसने हार मान ली है।

अंधेरा होन पर मैं खिड़की के आगे मोटा पर्दा तान कर रजाई अपन गिद कस कर लपेट लेता हू। ठंड से कपकपी सी आती है। मैं माथ पर विक्स मल कर लिखना शुरू करता हू इस कमरे के सारे मौसम गर्माई चाहते हैं

शाम की रिपोट दने के लिए हवलदार मजर आ जाता है। एड़िया बजा कर फौजी सलाम देते हुए कहता है "सर सब ठाक ठाक है ।" मैं जानता हू कुछ भी ठीक नहीं है। मरा मिरजा हुआ समार तहस-नहस हो गया है। जो पात्र पास सरक आए थ, कहीं छिप से गए हैं। कौन जाने लड़ाई पर गए हुए फौजो की तरह अब वह लौटेंगे या नहीं।

सामने की दीवार पर बी० प्रभा की एक पेंटिंग की नकल है औरत का फैला हुआ हाथ और चेहरे पर भय की पीड़ा। मेरी नजर पेंटिंग के बराबर लटकी हुई अपनी वर्दी पर टिक जाती है मुझे बदमन पर गुस्सा आता है—वर्दी कितनी गलत जगह पर लटकाई है। सवेरे ही उसमे वर्दी की जगह बदलने के लिए कहूगा।

हवलदार मजर के जान के बाद मैं बराबर के कमरे वाले डाक्टर के पास चला जाता हू। वह मरे सामने नग चित्रों वाली कितनी सारी पत्रिकाएं बिखेर देता है। मैं उठने लगता हू तो वह रोक लेता है 'बठिये, आपको कोई नयी चीज सुनाता हू।

वह टेप रिकाडर पर साऊंड आफ सक्स का नया खरीदा हुआ कसट चढा देता है 'जानते हैं बड़ी मुश्किल से ब्लैक म मिला है।'

औरत मद के भाग के समय की आवाजे नगी होकर कमरे मे फैल गई हैं डाक्टर मेरी ओर देखता है और खुल कर हसता है।

मेर कमरे मे किताबा ने शमसार होकर एक दूसरे मे चेहरा छिपा लिया है। चित्र वाली औरत का फैला हुआ हाथ उसकी आखें ढकता हुआ माथे पर आ गया है। और नगे सास और तेज हा गय हैं।

मैं जानता हू, कुआरी उम्र को लगे इलजाम की तरह यह कमरा भी मेरी उम्र के वर्षों पर फैल गया है।

पीछे मुडकर देखना हू तो कमरो की एक लम्बी कतार है, चितकबरी छाव की तरह जहा भूरी चोटिया भी रीगती थी और कभी कभार ठडी पवन भी बहती थी, पर कमरो की ओर लौटना अपने आप की ओर लौटने जैसा नही लग रहा है।

तपती दोपहर मे पैरो के छाले से बचने के लिए उचका उचका कर कभी काली सिर पर पर धरता हू कभी सफेद पर। उम्र की दोपहर की तरह सिलें भी सब की-सब तप रही हैं। लगता है—यह सफरनामा कमरो का नही, कमियो का है। तभी तो यह कमरे लेनदार की तरह रास्ता रोक कर खडे रहे हैं।

खालसा कालिज अमृतसर के निकट अमत होस्टल के सामने वाली गली मे बाए हाथ पर पहला दरवाजा मेरे उस कमरे का है जहा मैंने पहली कहानी लिखी थी। कहानी खत्म करके सोया तो रात ढल रही थी। न जाने कैसा हुआ कि एक चिडिया मेरी करवट के नीचे आकर मर गई और मेरी बाकी रात आसा मे ही बीत गई। अब भी जब कोई "बजर

मोटे अक्षरा में सजा ली थी   हाय छिदीए, रुत है बहार की   ।

उस महीने छिन्दी का पिता किराया लेने आया तो उम्र की शरारत जसे बोल उसके माथे से टकराये और उसने बाद मे जल्दी ही हमसे कमरा खाली करवा लिया।

तब यह खयाल तक भी नही था कि वह कमरा 'दोस्ती के कमल फूल' की नीव बन गया है।

सुना है कई कमरे प्रेमिका की काया के समान भी होते है और मन करता है कच्ची शराब बनकर सिर को चढे रहें शायद हाते हागे। पर मुझे तो यह मालूम है कि अधिकतर कमरे उस औरत के अकेलेपन के समान होते हैं जो पत्नी होती है। मुझे ता बहुत से कमरे उस अजनबी औरत की तरह ही मिले हैं जिसका साथ सासो की मजबूरी हाती है।

गाधी आश्रम मे मेरा बैरक जैसा कमरा न प्रेमिका की काया के समान था और न ही पत्नी के अकेलेपन के समान था। मेरा वह कमरा गिरगिट के समान था—नित रग बदल लेता था।

उन दिनों मैं आश्रम का पत्रिका "भूदान' का तीस रुपये मासिक का सहायक सम्पादक था और आश्रम की चारदीवारी से बाहर आने के लिये पढाई भी कर रहा था।

सदा की भाति हमारा दिन तडके चार बजे शुरू हा जाता था। गाधी चर्खा हाथ म लिये आश्रम के सब 'गाधीवादी' ठड से ठिठुरते हुए बापू खटीर पहुच जाते थे। प्रायना स्थल की ठडी बजरी पर बठ कर गाधी चर्खे पर तार कातते हुय हम प्रायना के शब्द ऊचे स्वर से गाते थे "उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब रन कहा जा सोवत है।'

एक दिन प्राथना से लौटे ता कमरो की तलाशी हो चुकी

धरती" की बात करता है तो मुझे वह मरी हुई चिड़िया बहुत याद आती है।

वह कमरा गली से नीचा था। गंदी नाली का पानी प्राय अन्दर आ जाता था। कमरे में बदबू फैल जाती थी। सस्ती धातु पर सोने का पानी चढाने की तरह मैं धूप जला लेता था।

उस अंधेरे कमरे में न कभी धूप आती थी और न कभी सूरजमुखी खिलते थे, पर फिर भी उस कमरे में हम एक एक करके तीन दोस्त इकट्ठे हो गए थे। कमरे का बिचला दरवाजा आंगन की ओर खुलता था। इस पर आंगन वाली तरफ लटका रहता था। पानी के लिए हम गली की मोड पर लगे हुए कमेटी के नलके का मुंह देखना पड़ता था। किसी आवश्यकता के लिए हम निचले दरवाजे के मुहताज नहीं थे। पर अचानक हम दरवाजों के दो सूराखों के मोहताज हो गए थे।

मालिक मकान की कालिज में पढ़ने वाली लड़की अपनी उम्र की सी थी, बड़ा नाख। वह कालिज से लौटती तो साइकिल ड्योढी में रखते ही गाने लगती। हमारे अंधेरे में जैसे दीव जल जाते। कमरे में हलहल मच जाती हम एक बार भी दरवाजे के सूराखों की ओर दौड़ते। पहले पहुंचने वाले सूराख हथिया लेते। तीसरा जना बिस्तर इकट्ठा करके जल्दी से दूसरी चारपाई पर फेंक देता और चारपाई को दीवार के साथ खड़ी करते हुए कान में उंगलियां फंसा कर रोशनदान तक पहुंच जाता।

इससे अधिक हमने हिन्दी को कभी नहीं देखा था, पर उसकी गुनगुनाहट हमारे बदबूदार कमरे की महक थी और महक के आलम में हमने प्यास जैसी एक पंक्ति कमरे की दीवार पर

माटे अक्षरों में सजा ली थी   हाय छिदीए, रुत है बहार की   ।

उस महीने छिन्दी का पिता किराया लेने आया तो उम्र की शरारत जैसे बोल उसके माथे से टकराये और उसने बाद मे जल्दी ही हमसे कमरा खाली करवा लिया।

तब यह खयाल तक भी नही था कि वह कमरा 'दोस्ती के कमल फूल' की नीव बन गया है।

सुना है कई कमरे प्रेमिका की काया के समान भी होते है और गन करता है कच्ची शराब बनकर सिर को चढे रहे शायद होते होंगे। पर मुझे तो यह मालूम है कि अधिकतर कमरे उस औरत के अकेलेपन के समान होते हैं जो पत्नी होती है। मुझे तो बहुत से कमरे उस अजनबी औरत की तरह ही मिले हैं जिसका साथ सासों की मजबूरी होती है।

गाधी आश्रम मे मेरा बैरक जैसा कमरा न प्रेमिका की काया के समान था और न ही पत्नी के अकेलेपन के समान था। मेरा वह कमरा गिरगिट के समान था—नित रग बदल लेता था।

उन दिनो मैं आश्रम की पत्रिका "भूदान' का तीस रुपये मासिक का सहायक सम्पादक था और आश्रम की चारदीवारी से बाहर आने के लिये पढाई भी कर रहा था।

सदा की भाति हमारा दिन तडके चार बजे शुरू हो जाता था। गाधी चखा हाथ म लिये आश्रम के सब 'गाधीवादी' ठड मे ठिठुरते हुए बापू खटीर पहुच जाते थे। प्राथना स्थल की ठडी बजरी पर बठ कर गाधी चर्खे पर तार कातते हुये हम प्रायना के शब्द ऊचे स्वर से गाते थे "उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब रन कहा जो सोवत है।'

एक दिन प्राथना से लौटे तो कमरा की तलाशी हो चुकी

थी। तलाशी पहले भी बहुत बार हुई थी, लेकिन उस दिन की तलाशी अडो के छिलको, सिगरेटो के टुकडो या सिनेमा के फटे टिकटो के लिये नही थी, बल्कि मिल के बने कपडो के लिये थी। वसे तो आश्रम मे हम सब खददरधारी थे, लेकिन विस्तर की चादर और तकिये का गिलाफ आदि मिल के बने कपडे, को बरत लेते थे—और यह सगीन जुर्म था।

हमारे पहुचने तक कपडो के ढेर को आग लगाई जा चुकी थी। उस ठडे सवेरे के समय औरो के साथ आग के पास खडा हुआ मैं भी ठिठुर रहा था।

आश्रम के उस कमरे मे मेरा निजी कुछ नही था। वहा किसी का भी निजी कुछ नही था। बाहर जाते समय न कमरे पर कोई ताला लगता था और न भीतर ही कुछ धरा पडा रहता था। भाय भाय करते कमरे की एक दीवार पर महात्मा गाधी की चौखटे मे जडी एक तस्वीर थी जिस पर टूटे हुये सूत की एक अटी लटकती रहती थी। चौखटे का ऊपरी भाग बीटो से भरा हुआ था। चिडिया चौखटे पर बठ कर सूत की अटी से अपने घोसले के लिये धागे खीचती रहती थी। एक कोने मे लकडी का तख्त था जिस पर बैठ कर मैं काम भी करता था और आराम भी। बरामदे मे पडा हुआ गाधी चर्खा कील पर टगी हुई सूत की अटिया और अटियो के समान ही कील पर टगे हुय विचार —यह सब कुछ मेरा था, खद्दर के भदमैले कपडो समेत मेरा था जिन्हें धोने के बाद प्रैस करने के लिये तकिये के नीचे रख देता था।

वहा मेरे दरवाजे तक बहुत बडे बडे नेता चल कर आये थ,

पडित जवाहरलाल नेहरू, डाक्टर राधाकृष्णन, श्रीमती इदिरा गाधी और, और न जाने कौन कौन। यह बात अलग है कि तब मेरा कमरा पहले जितना भी मेरा नही रहता था। तब उस कमरे के मस्तक पर किसी विभाग का कोई बोर्ड लटका दिया जाता था, कभी हथकरघा विभाग कभी खादी विभाग कभी साबुन विभाग, और कभी । औरो के साथ मैने भी दहलीज मे खडे होकर नताओ के गले मे सूत की अटिया डाली थी। (वहा हाथ से काते हुये सूत की अटिया सिर्फ नेताओ के गले मे डालने के काम आती थी, कपडा बनाने के नही।) नेता अपने हाथो से पत्थर लगाते तस्वीरें खीची जाती, भाषण होते। तालियो के शोर मे वह ग्रान्ट मजूर करते और चले जाते। नेता के जाने के बाद मैं अपना तख्त लाकर फिर उस कमरे मे रख लेता था।

पहली ग्रा ट मिलने तक पहले नेता के कर कमलो से लगाया हुआ पत्थर मेरे कमरे के बाहर कायम रहता और ग्रान्ट मिलने के बाद वह पत्थर उखाड कर फालतू सामान वाले एक कमरे मे फक दिया जाता। और इसके बाद नई ग्रान्ट के लिये मेरे कमरे के लिये कोई नया नाम सोचा जाता, किसी और नता के लिये नया पत्थर तैयार करवाया जात ।

और नये नेता के आने से पहले पहले मैं उसके गले मे डालन के लिए सूत की अटी भी तैयार कर लेता था और अपना तख्त रखने के लिय कोई ओट वाली जगह भी ढूंढ लेता था

खानाबदोश जान कौन-सी ओट को अपना कमरा कहते होगे ?

यह फौजी बनन के बाद की बात है। एक शाम बाहर से

लौटा ता एक अजाची औरत अघनगी मेरे बिस्तर पर लेटो हुई थी। अवले मद के कमर मे एक अकेली औरत! दहलीज म अदर पैर रखत रखत मैं पसीने पसीने हो गया।

उस औरत के गिद पवित्र हवा थी। उस औरत के पीछे उजाला सा था जसे चित्रा म महापुरुषा के पीछे हाता है। मैं तब यह नही जानता था कि वह औरत मेरी कहानी चार तीन दा एक' का पुशो थी। मुझे यह भी पता नही था कि उसका पति अधेरे कान की आर ग उसे अधमरो की मैल की दीवार फादकर खुद पड के नीचे अधेरे म गटा बलगम थूक रहा था। और आज बहुत बरस बाद मुझे यह भी पता नही है कि पुशी अपनी कमाई से कटे फेफडो वाले अपने पति की जान बचा भी सकी है या नही। आज मुझे सिफ इतना पता है कि कहानिया के पैर हात हैं और वह चल कर किसी भी कमरे तक पहुच सकती हैं।

बहुत बफ पड रही है जिन्दा पर भी और मर हुओं पर भी। बरस इस बफ पर फिसल रहे हैं और वस फिसल रहे हैं और मैं रुकने के प्रयत्न मे कभी इस दरवाजे के कुडे को पकडता हू और कभी उस दरवाजे के कुडे को। मैंने पहले इतनी बर्फ कभी नही देखी थी बफ कभी रुई के गालो की तरह गिरती और कभी दानदार बूरा की तरह। मेरे कमरे की छत से बफ की सलाखें नीचे का लटकती रहती और कभी कभार सलाखें अपने ही भार से टूटकर नरम बफ की छाती मे खजर की तरह खुभ जाती।

कमरे के भीतर बुखारी सुर सुर हाती रहती। कमरा कुछ गम हो जाता तो खिडकी के शीशे पर जमी हुई बफ पिघल

जाती। खिडकी से कचनजघा की चाटी दिखाई देती और नीचे हजारों फुट गहरा खड्ड। नजर की पहुच तक घना जगल और लकीर को तरह दीखती नदी। इस खिडकी के आगे भी दुहरा कम्बल तना रहता और दरवाजे के आगे भी। कमरे के बाहर वर्फीला तूफान चलता ता आग लगने के डर से बुखारी बन्द करनी पडती। उस समय माटे माटे कपडे भी गर्माई का साथ छोड देते। सवेरा होने तक शीशी मे सरसा का तेल भी जम जाता, और बाल्टी का पानी भी। उस कमरे के पहले सवेर का मैंने ताह के मग से बालटी की बर्फ तोडकर इस्तेमाल करने के लिए गर्म पानी म मिलाते हुए सोचा था इस कमरे म दो बरस का लम्बा समय कैसे बीतेगा ? और अब वह कमरा बहुत पीछे रह गया है।

उस कमरे म मैंने अच्छी बुरी बहुत किताबे पढी थी। उसी कमरे से मैंने 'नागमणि' को पहली बार कहानी भेजी थी और उत्तर मे अमृता प्रीतम ने लिखा था—'जसवीर! फौज के बारे मे गहराई से कभी कुछ नहीं लिखा गया। तुम जरूर लिखना। नता जैसे मन जान कैसा सहारा खोजते रहते है।—उस कमरे मे लिखना मेरा ईमान हो गया था।

निर्मल रातो में उस कमरे के बाहर नरम गद्दे जमी बर्फ पर बैठकर मैं उगली से ठडी बर्फ पर एक ही नाम कई कई बार लिखता था। वहा आकाश बहुत निकट होता था और मेरा जो करता था कि हाथ बढा कर एक तारा अपने लिए भी तोड लू पर मेरा हाथ हर बार कोई पोरुआ भर नीचे रह जाता था

दो बरस मैंने बर्फ जो थी। सचमुच मुझे ही सूरज चाहिए

, पर इतना निकट नही कि बदन झुलस जाए और होठो पर
डी जमी रहे।

मुझे सूरज चाहिये था पर इतना निकट नही कि हवा
पती रहे और रेत की लहरो पर दृष्टि की सीमा तक मृगजल
त जाए।

मुझे सूरज चाहिये था पर इतना निकट नही कि मेरा
बू भट्टी बना दिन भर रेत के समुद्र मे नाव की तरह तरता
।

तुर्वी म सरज सचमुच इतना ही निकट था। मा जसा कोई
मीला तक कही नही था।

तपते हुए तम्बू मे दिन भर न मौसम के फूलो की प्रतीक्षा
ती थी और न वर्षा की। एसा वहा कभी कुछ नही होता था।

सप्ताह का एक दिन प्रतीक्षा का दिन होता था। ट्रक बाड
जाकर सप्ताह भर की इकट्ठी हुई डाक पुराने समाचारपत्र
र पत्रिकाए ले आती थी। यह कयामत किस्से वाले अंग्रे
ना को आखें दिलाने के लिये सात समुद्र पार से लाए हुए
ले गुलाब जैसी लगती थी।

वर्फ मेरे जहन पर फली हुई थी। एक साझ थी, वर्फ रेत
र सूरज के बीच। इतजार इतजार ! और बस
जार ! शायद इसी साझ की बदौलत मैंने मरुस्थल म
कर एक जलती दुपहरी मे वर्फ की कहानी लिखी थी 'टटे
रा की चिता'

वर्फो मे मैं महीना सूरज का इतजार करता था और यहा
बू मे बठ कर हमेशा ढलती दुपहरी का इतजार होता था।

सूरज की गर्मी मद्धिम पडती तो मैं अपने त म्बू म बठा,—

नवला को आपस म धीगामस्ती करते हुए झाडी की आट म गुम होते देखता। पछी पता नही कहा से आकर चहकते। हिरन मरुस्थल मे चौकडी भरते बडे ऊपरी लगत। मरुस्थल म उह नरम घास न जान कहा मिलती होगी? कहा मिलता होगा झील का पानी?

अचानक झुनझुनी सी आती। मुझे बढती हुई ठड का ख्याल आता। इससे पहले कि दात बजने लगें, रजाई से हाथ बाहर निकालना कठिन हो जाए मुझे लिखने-पढने म कुछ समय लगा लेना चाहिए। मेरा यह निणय अभी लागू भी नही हुआ होता कि बराबर के तम्बू वाला मेजर बदूक हाथ मे थामे आ धमकता है—"कमाल है इस वक्त भी तम्बू मे? चलो, उठो, शिकार को चलते हैं।" मैं उसके साथ जाने की सोचता कल तडके ही सूरज के पूरी तरह धधकने से पहले कुछ तो करना ही पडेगा। "ऐसे तो किसी तीसरे मौसम के इतजार मे उम्र ही गुजर जायेगी।"

रेल के सफर मे पीछे की ओर दौडते हुए पेडो की तरह सारे कमरे एक एक करके लौट गए है सारे कमरे एक एक करके लौट जाएगे। कोई कमरा भी तो हाथ की लकीरो जैसा नही होता कि साथ चिपका रहे। और मैं दीवारो की परिक्रमा मधबीच मे छोड कर दीवार की ओर ही लौट आया हू, पर म कब इनकारी हू कि मैंने उन दीवारो से कुछ नही लिया। मैंन बहुत कुछ लिया है और वही बहुत कुछ, मेरी उपलब्धि है, पर उन दीवारो का जो कुछ मैंन सौपा है उसका हिसाब सिफ मेरे चेहरे के फीके पड रहे रगो मे है, और कही नही।

किसी अनचाही औरत के साथ उम्र काटने की तरह मुझे उन कमरा मे रहना ही था। किराये की औरत की तरह कमरा ने भी उम अर्से के लिय मुझसे निभाव करना ही था। कभी कभार मुझे दीवारो का माथा चूमना ही था, प्रेमिका के होठो की तरह। अब इस रात का भी क्या पता है कि मेरे कमरो की दीवारें नगी थी। मेर कमरा के पर्दे सारे ही पारदर्शी थे। मेरे कमरे आग की भट्टी भी थे और वफ का घर भी। अश्लील बोल मेरी दहलीजा को कुछ इस तरह भी पार करके आ जाते थे जसे चकले का दर वाजा होता है। मेरे कमरे ता मरुस्थल के बीच लगे तम्बू जसे ही थे —दिन मे आग के समुद्र में तरते थे और रात को धुवा की बफ पर हाथ सेंकते थे।

कमरे की तलाश लम्बे सफर क लिए अच्छे साथी की तलाश जैसी है पर इच्छित कमरे के नक्श धुधले हैं, बस वसे ही जैसे सपनो के देखे हुए चेहरे पहचान के पर होते है। मैं अपन कमरे की सारी हवा म जीना चाहता हू। मेरे वह पात्र जो दूर अजनबी दस्तक पर जिलावतन हो जाते हैं मैं उन्ह अपने साथ रखना चाहता हू। मैं हर्गिज भी अपना कमरा ऐसा नही चाहता कि कोई भी कासिम मेरे दरवाजे के आगे खडे होकर "खुल सिम सिम" बोल सकें।

एक कमरा बनाने के लिय बस ता सीमट और इटा की ही आवश्यकता होती है—सास तो हम अपन ही लेने होते हैं—पर सुपने जसे कमर का सुपना अभी भी हसरत जसा लगता है। सोचता हू—क्या अपने मुल्क में मन का चाहा कुछ भी नही होता ? न प्रेमिका, न मित्र न पत्नी, और न कमरा।

यहा हर मास ताप जसा क्या है ? बराबर के कमर म

दावट न गाउ ड आप सवा य सेट की दूसरा तरफ लगा दी है ओरा-मन के लम्बे लम्बे गास और अश्लील वान मर कमरे म फिर पल गए हैं। उसन आवाज और ऊचा वर दी है ताकि मैं उसकी कीमती मिलियन के लिए वाह वाह कर सकू।

और मैं अभी भी लिखन के बार म साच रहा ह। अचानक मैं पैन एक आर रख कर उठ गया हू। मैंन खीभ कर अपन आपसे कहा है—"मैं सिर्फ लिखता ही क्या हू? लडता क्यो नही?"

सुरजीत सिंह सोखी (१६४२)

दोस्त! आप ही बताए, भला सिक्लीगरो, बनजारो और पनाहगीरो के भी कमरे होते हैं? सिकलीगर, बनजारा और पनाहगीर शब्द पढ कर आप हैरान हुए होगे, लेकिन मैं हैरान नही क्योकि इनम से एक नही, तीना शब्द ही मेरी समूची जिन्दगी से सबधित हैं।

अब तक मैं सतीस पतझडा और बहारो को भुगत चुका हू या यह मुझे भुगत चुकी हैं। अब चाहे शिखर-दुपहर नही रही, परछाइया ढल रही है फिर भी अभी खून गम है। यह जुम मैं सरआम कबूल करता हू कि जिन्दगी के पाचवें साल से लेकर अब तक (बत्तीस बरस) मेरा मन भटक्ता रहा है। इस 'बे घर और बे-कफन' मन को समझाते समझाते सिर की नसें भी रह गई हैं।

दोस्त इसी भटकन ने मुझे सबसे पहले मेरे गाव जौडे स कैरा, नत्थू चक लौहके गापाले, घुद्दालके और शहबाजपुर की ओर जाने वाले रास्तो पर भटकाया। जब भी चित ज्यादा उदास होता मैं उपरोक्त गावा मे लगने वाले सालाना मेलो म कबड्डियो के मौके पर बैतबाजी और किस्साखानी सुनने के लिये

रात-बेरात चल निकलता था। पाच साल स लेकर अट्ठारह साल की उम्र तक (जब कि म खालसा कालिज अमृतसर मे दाखिल हुआ) के तरह बरस ऊपर वाले रास्तो न ऐसे निगल लिए जसे नदी के किनार बेखबर साने वाले 'प्राणी' का मगर-मच्छ निगल लेता ह। घर मे दादा दादी, माता पिता शायद प्यार भी था, पर घर कभी अपना नही लगा। और जब घर अपना नही लगता ता घर के किसी कमरे से मेरी क्या सलाम दुआ हो सकती थी ?

दोस्ता ! जौडे गाव की गलिया म धक्के खा-खाकर अट्ठा रह साल की उम्र मे मैं अमतसर पहुच गया। उस समय तक घर मे गरीबी का बोलबाला था, इसलिये मन का और तजी से भटकना लाजमी था। कालिज की पढाइ के लायक घर म पैसे नही थे, पर मैं पढने के लिय अपनी जिद पर अडा हुआ था तीन कपडा और तीन सौ रुपयो के साथ शरणार्थिया की तरह गुरु रामदास सराय म शरण ले ली। पर एक सप्ताह से अधिक भला सराय मे शरण ली जा सकती थी ? फिर बनजारा और सिकली गरा की तरह पच भौतिक, नाशवान शरीर का लेकर पाच छह महीने जौंह और अमृतसर के बीच रेलगाडियो मे भटकता रहा। घर को ता घर नही समझता था, फिर दास्ता ! आप ही बताए कि उत्तरी रेलवे के किसी डिब्बे या कैरो और जडांके के रेलवे स्टेशन के मुसाफिर खाने का अपने कमरे का दजा कसे दिया जा सकता था ?

पढाई पूरी करने की लालसा लेकर मरे भटकते मन न कई कथित रिश्तेदारा के दरवाजो पर दस्तक दी। मुझ जसे बन जारे को ठहरने के लिये भला कौन तैयार होता। जा पाच सात

के घर भगवान की आमद से तुलना दूगा, और वह उसी समय मुझे घर का 'घर जवाइ" और "मालिक' हाने का ऐलान कर देगी (वह घर की इक्लौती बेटी थी)। पर लगभग डेढ महीना पहले की तरह ही घुडदौड करत बीता। न मैंने देवी जी का कबूल किया और न ही क.ई मकान या उसका काई कमरा मरे नाम पर चढा।'

अप्रेल १६६६ से लेकर दिसम्बर १६६६ तक मैंने कई रातें गुरु रामदास मे लगर से 'परशादा छकने के बाद श्री दरबार साहिब की परिक्रमा म नीली छत के नीचे बिताईं। इसलिए, दोस्तो! *एक बात मैंने शिद्दत से महसूस की कि नीली छत* वाला बडा विशाल कमरा मेरा है। इसे अपना कहने से मुझे भला कौन रोक सकता है। इसी कारण १६६७ से लेकर अब तक राजाना तकरीबन सोलह घटे अपन 'रोजगार गह' मे या लोगो की खिदमत गुजारी मे बिताता। राजगार गृह" एक ट्रस्ट है और समूचे पजाबिया की मिल्कियत है और पजाब रोडवेज, *पैंप्सू ट्रासपोट की बसें और रेलगाडिया सरकार की है* जसे मेरे दास्ता की कारें और जीपें उनकी अपनी ह। इसलिए चौबीस घटा म से आठ घटे अपने अत्यन्त प्यारे प्यारे पुत्रा की सुन्दर, सुघड़ और लायक मा के मकान म गुजारता हू, और बाकी सालह घटे नीली छत के नीचे। यह नीली छत वाला कमरा ही मेरा कमरा है। इसे रचनहार ने पहले से ही सवारा हुआ है। इसलिये मैंने किस्म के फर्शों रग बिरग पर्दों ठडे एयर कडीशनरो और इसी तरह की और मुख्य सुविधाओ के बारे म कभी नही साचा।

१६७४ मे अपनी जीवन साथिन के गहन बेचकर मैंने ग्यारह

मरने का मकान खरीदा। उस समय मेरा बडा लडका होने वाला था। एक बात मेरे दिमाग मे बार-बार आती थी। मुझे तो कोई कमरा या घर अपने साथ नही बाध सका, और मेरा निगाडा मन २० जून १६४२ (मेरी जन्म-तारीख) से ही भटकता रहा है—कही मेरा बडा पुत्र (छोटे का अभी जन्म नहीं हुआ था) ऐसे ही न भटकता रहे—उसका कोई अपना कमरा होना चाहिये। इसलिये मैंने माता पिता की परवाह न करते हुए, अपने मकान की रजिस्ट्री जत्थेदारनी हरजीत कौर के नाम कारवाई ताकि पुत्र समझे कि मेरे पिता की तरह मेरी मा सिकलीगरनी, बजारन और या पनाहगीर नही है और मेरी मा का मकान मेरा अपना है।

मिदर (१९४३)

मैं शायद वहुत ममय से एक क्मरे की तलाश क्र रहा हू —उस क्मरे की जो कि मैं जव पदा हुआ था मेरे साथ ही पैदा हो गया था। पर क्ही वह क्मरा ? अभी तक मैं जान नही सका हू

वस एक ख्याल है और ख्याल हर क्षण बदलता रहता और ऐसे ही मेरा कमरा अपने रूम आकार वदलता रहता है। मैं शायद वनाने की जगह पर कुछ ढान के लिए पैदा हुआ था और इसका कारण शायद वह क्मरा है जिसम मैं पैदा हुआ था। वह कमरा उसका आकार और रूम सदा मरे साथ रहे हैं —उस क्मरे का केवल एक दरवाजा था और उसमे सदा अधेरा रहता था, और उस क्मरे की एक ऐसी दुरगध थी जो कि मेरी अत डिया मे उतर गई है। उसकी दीवारा मे स कच्ची मिटटी के ढेले से गिरत रहते थे, और छत सदा टपक्ती रहती थी। उस क्मरे मे कोई फश नही था जमीन सीली रहती थी। और वह क्मरा था और उसकी दुग ध जमान की दुग ध वन कर मुझे व्याकुल करती रहती है

जव मैं पैदा हुआ उसमे एक व्याकुलता पैदा हो गई था।

मारा परिवार रो रहा था। मेरी मा की चीखें आज तक मेर काना म गूज रही है—एक असाधारण जीव पदा हो गया था, मेरा सिर बहुत फूल गया था और सबने समझा था कि यह बच्चा कुछ घटे जी कर मर जायगा। पर ऐसा कुछ नही हुआ, और मैं आज तक जीवित हू और अभी तक मेरे शरीर के साथ एक दुग ध स भरा हुआ कमरा, चल रहा है जिमम से चीखें निकल रही ह

मैंने साचा था एक दिन साधु बन जाऊगा और इस तरह मरा व लिये कमरे की दुगध से मुक्ति पा जाऊगा। इसीलिये मैं कभी भी कमरे के भीतर अधिक समय तक नही टिक सका। मै बचपन से ही अकेला सडको पर, गलिया म, आवारा घूमत हुए गीत गाता रहता था और फिर जब गहरी रात मे मैं अपनी छत को घूरता तो ख्याल आता कि मैं इस घर का छोड दूगा और वानप्रस्थ ले लूगा या फिर मानसरोवर झील चला जाऊगा जहा से सतलुज नदी निकलती है (सतलुज मेरे गाव के पास से होकर बहती है) पर मेरी दुबलता कि मैं एक कमरे के स्कूल म बैठ कर मास्टरा से मार खाता रहा। और जिस कमरे म मैंने मास्टरा से मार खाई, जिस कमरे म मैंन बचपन गुजारा, और जिस कमरे म मैं पैदा हुआ, यह सब मेरे भीतर ही भीतर निर्मित होत चले गए और मुझे जो कमरो का भय था वह भी बढता गया। और अब भी जब मैं बहुत ऊची इमारते देखता हू, डर जाता हू। मुझे लगता है ज्यो ज्यो हम छतें बनाते हैं हमारा अस्तित्व हमारे पास से बिखरता जाता है। मुझे लगता है मनुष्य कक्रीट म दबा हुआ एक कीडा है और वह सीढिया और कमरो के अ दर रीगने के लिये आजाद है। मेरे ख्याला म एक चाव

जमा उमडता है कि जब यह बनावटी कमरे ढह जाएंगे तब आदमी-आदमी के गले से लग कर रो सकेगा, और फिर मनुष्य की हर चीख पुकार मे सब साझीदार होंगे, और फिर मुझे लोहे पजरो से डर नही लगेगा।

पर नही, ऐसा नही होगा। मेरी कल्पना से दुनिया का कोई भी विकास अपनी दिशा नही बदलेगा, 'यूयाक' की ऊची इमारतें गिरेंगी नही और न किसी गाव के कोठे की छत उडेगी। और इस सब कुछ म मैं भी तो एक अदद सास लेने वाला प्राणी हू जो मानसरोवर की बजाय आनन्दपुर की एक गदी गली के एक मकान म रह रहा हू, और जिसे लोग प्रोफेसर साहब कहते हैं। अपने ऊपर तनी हुई छत को मैं घूरता हू, मेरी पत्नी है बच्चे हैं जिन्ह छत की आवश्यकता है और कमरो की भी। उनके कमरे हैं—मेरी पत्नी का कमरा, मेरे बच्चो का कमरा, मेरे मित्रो का कमरा—और इनमे मेरा कमरा कौन सा है, मैं फैसला नही कर सकता। बस मैं हर कमरे मे आउटसाइडर की तरह दाखिल होता हू और अपना काम पूरा कर के बाहर आ जाता हू। कोई पुस्तक मेरे हाथ मे होती है और मैं शरारती बच्चे की तरह ड्राइग रूम की सिम्मेट्री को तोड देता हू। मेरे साथ सोई हुई पत्नी जब सवेरे उठती है तो मेरे तकिये के नीचे रजाई के अन्दर पत्रिकाए होती है और फर्श पर कागज के टुकडे। वह मुझ से किसी दूसरे कमरे मे चले जाने के लिये कहती है तो मेरे साथ कितना कुछ उस कमरे मे पहुच जाता है और सब कुछ को सभालने म उसे आधे दिन काम करना पडता है—मेरा कोट मेरी चप्पलो के साथ साथ आए हुए चाय के खाली प्याले

मेरे लिखने के लिये कोई जगह निश्चित नही है जैसे मेरा

कमरा कोई नही है। कमरे के अदर ड्राइग रूप म दुकान पर, काफी हाउस मे या कालिज के लान मे बठ कर मैं सोचता रहता हू और सोचे ही जाता हू। लिखने स मझे डर लगता है। मैं चाहता हू किसी तरह लिखे बिना ही काम चल जाए। मैं बस अपनी आत्मा स जूझता रहता हू जो कि तारो से भरे आकाश से लेकर झीलो से घिरे पवतो म कही खो गई है और किसी भी दीवार का स्वीकार नही करती। वह डरती है तब जब किसी लोहे की भटटी मे गम लोहे पर हथौडा पडता है और मेरा अस्तित्व हवा म तरता दिखाई देता है। मैं न जाने किस चीज को पकडने के लिये मकान की छत पर घूमता हू और पवत के पीछे डूब रहे सूरज से बातें करता हू और किसी आवाज को पकडने की कोशिश करता हू और जब वह आवाज मेरी पकड मे नही आती तो मैं टिकटिकी लगाकर सन्नाटे मे घूमता रहता हू, और तब मुझे लगता है कि मैं अवश्य एक दिन भाग जाऊगा और वह कमरा जिसकी चाबिया कब की गुम ह और जा एक गुबद बन कर आजकल मेरे इद गिद फैल रहा है मैं उसकी तलाश मे भाग जाऊगा। पर कहा है वह कमरा ? मेरी भागने की दिशा क्या होगी ? और जब मैं इस तरह चारो ओर निगाह दौडाता हू, मेरी कल्पना की उडान, सामने के घर के अदर थरथराती हुई लडकी की आवाज मे गुम हो जाती है। चाहने लगता हू कि वह सितार पर अलाप करे, और मेरी दोस्त लडकी कोई जुमला सुनाए तो मैं नोट करता जाऊ और बस कमरा फैलने लगे। रात की गहराई म बठ कर सोचता जाऊ अपने आप स बातें करता जाऊ और सूरज निकलने की आवाज, धुध का सगीत और खेतो की सुगध को शब्दो मे अनुवाद कर दू। बस के अडडे की आवाजें

रेल के पुल पर बनती—मिटती परछाइयों को पकड लू और फिर एक कमरा बनाऊ

एक वह कमरा जिसमे मेरी आत्मा न मरे जिसम दुनिया भर की आवाजें तैरती हुई भीतर आ सकें जिसम से समुद्र का सगीत और हवा की सुगध और बादलो का अधेरा—मेरे साथ बातें कर सकें कभी सोचा था एक भोपडी बनाऊगा जिसम कुछ पुस्तकें कुछ कागज और कलम दवात होगी और मैं सारी जिन्दगी मे बस एक पुस्तक लिखूगा और खामोश मर जाऊगा। पर नही मैं यह भी नही कर सकता और न ही कर सका हू मेरे भीतर का लघु मनुष्य मुझे खामोश नही रहने देता, मैं प्रशसा चाहता हू मैं निन्दा चाहता हू और अपना नाम मैं रेल की दीवारो पर कई बार लिखा देख कर खुश भी होता हू और इस तरह अब मैं जिस दिशा म पहुच गया हू मुझे एक कमरे की आव श्यकता है—एक कमरा जो बस्तियो से दूर नही, बल्कि शहर के ठीक बीचो बीच हो जिसकी खिडकियो म सारे शहर की दुगध भीतर आती रहे, सूरज के टुकडे बिखरें बन कर पैरो के नीचे दबते रह और हवा का हर भोका सकडो कागजो के टुकडे भीतर बखेर दे। कमरे म दरवाजे न हो पर्दे न हो जो कि बन्द हो सकें, जो कि उड सकें। छत म सूराख हो जिनसे पछी भीतर आ सकें और मुझसे बात कर सकें। सूराखो के रास्ते भाकती हुई चादनी को कहीं छिपा कर रख सकू। कमरे की दीवारो पर डाली माइकलएजिलो, पिकासो की पेंटिग्ज हो एक ओर स्टोव पर चाय बन रही हो किताबो के ढेर हो, कही कोने म दुनिया भर के सगीतकारो के रिकाड हो नीचे केवल पत्थर हो और उन पर बठा मैं पढ रहा होऊ सोच रहा होऊ, सो रहा होऊ—

या सगीत के धुना पर नाच रहा होऊ। जी करता है उसकी दरारा से कोई भाक रहा हा, वह जिसकी कि मुझे तलाश है, और जा कभी मुझमे यह कह सके मैंने तुम्हे देखा था, जब तुम्हारे मुह स जहर निकल रहा था और उसे तुमन अमृत कह कर लोगा म बाटा था। मेरे कमर की दीवारा के रग गहरे काले और लाल हा, और हर दीवार को अलग-अलग चेहरा से सजाया हुआ हा। उसम आदि मानव से लेकर अब तक के मनुष्य के *आकार चित्रित हा। उसमे न कुछ बन्द हा और न ही खुला।* उसके आगे लिखा हा — अपन कपडे बाहर उतार कर आओ! आप यहा से जा चीज चाहते ह चारी करके ल जा सकते ह कृपा करक भिखारी मत बनियगा! और मेरे कमर के हर सुराख क आगे शीशा लगा हुआ हो जिसम भीतर जाने वाला हर आदमी पहले अपना आकार देख सक। पर क्या ऐसा हो सकेगा अमृता!! शायद नही। मेरे कमरे म ता सामन यह गुरुआ की तस्वीरे पडी ह साफे पडे ह—कलेडर टगे हुए ह जिन पर तारीखें दज ह पर जिनकी ओर मैंने कभी नही देखा। पायदान पडे है जिन पर आपको पैर साफ करन पडते है। घडी रखी है जा कि मुझे छीलती रहती है हर पल अपनी टिक टिक से और दीवारा का रग हरा है। मेरे परिवार के लागो की तस्वीरे है *और म लिख रहा हू। मेरी पत्नी चाय के लिये पूछ कर गई है* और अब वह बच्चा के साथ सो गई है। मै जाग रहा हू और और वह कमरा भी मेरे साथ जाग रहा है जा कि मैंने अपनी पहली चीख के साथ अपन जन्म के समय देखा था जब मैंने पहली बार अपनी आख खोली थी और जा कि अब हर दीवार से अलग होकर मेरी उस लालसा का भडका रहा है और मुझसे

कहे जा रहा है—"जमीन के अ दर एक कब्र जसा कमरा बनवा लो । एक कमरा आसमान मे बनवा लो। एक शहर के ठीक बीचोबीच, एक शहर की भयानक आवाजा के अन्दर बनवा लो। और फिर उनकी यात्रा करा। अपनी हर जून बदलते समय कमरा भी बदल लिया करा । पर कहा ? और कमे ? मेरा कमरा मुझ म खो गया है दोम्तो !'

देविन्दर दीदार (१६४६)

लफ्ज मेरा' से हर आदमी का एक अजीब लगाव होता है और 'मेरा कमरा सच ही एक हसरत का दूसरा नाम है और फिर लेखक किस्म के लोगो के लिये एकान्त' जिन्दगी की तरह जरूरी होता है।

सबसे पहले अपने जिस कमरे का ख्याल आता है उसे मेरा' कहना उचित नही है क्यो कि उस समय मेरा लफ्ज के अर्थों मे मैं अनजान था। 'गन्ना' तो मेरा हो सकता था, पर 'घर' या कमरा' 'हमारा ही होता था। उस तेरह कमरो वाले तीन मजिले मकान मे से सन्दूका वाली कोठरी का ही ख्याल आता है। कहते है कि पहले उसमे चार सन्दूक और एक लोहे का बक्स हुआ करता था और इनसे ज्यादा उसमे और कुछ नही रखा जाता था इसी कारण उसका नाम सन्दूको वाली कोठरी पडा हुआ था। पर जहा तक मुझे याद है उस समय उसम तीन सदूक होते थे। एक मेरी पडदादी जी का, एक दादी जी का और एक मरी मा का। दरवाजे के एकदम सामने एक काफी बडा निवाडी पलग पडा रहता था जिसके बडे-बडे पावो म पैर अडाकर उस पर चढना मुझे अभी तक याद है। बस यही 'कमरा' हमारा

नीचे, और चाचा जी की अन्दर की ओर जहा आग वाद म जलती थी, हमारे घर म धुआ पहले भर जाता था और हम जमे बालक खासते हुए बाहर भाग जाते थे। जाडे ता किसी न किसी तरह धूए धुगार म बीत जाते पर गर्मिया म छत के नीचे रसोई करने और सोन की ममस्या शहर की तग गलिया से ज्यादा बढ चढ कर हाती। गाव का खुलापन इस घर मे एक सुपना था। रात को हम रतजगा करने वाली एक बुजुग माई नामा के आगन म साते थे, जहा मेह आने पर हमे सैंतालीस के दगा वाली आपा धापी पड जाती बहुत बार किसी बात को लेकर तू तू म मे हाने के कारण उस किले की बजाय अलग-अलग घर बनाने की खुसर फुसर मैंन सुनी थी—पर फिर शान्ति हो जाती क्याकि घर की आर्थिक हालत अब वह नही थी जा इस मकान के बनने के समय थी। मै दसवी पास करके अपने 'कमरे' की तलाश मे 'एयर फोर्स' मे भर्ती हो गया।

पर वहा पहुचने के बाद हालात घर से भी ज्यादा मुश्किल दिखाई दी। मैं अपने बैच का सबसे पहला ट्रेनी था और मेरे साथ था शिमले से ही भर्ती हाकर आया हुआ धरमपाल डागरा पहल तो शिमल से बगलौर तक का सफर बौखला दता है, खास कर उस आदमी को जिसन अमृतसर भी अमावस के बहाने देखा हो। भारत के एक कोने से दूसर कोन का सफर ऐसा लगता था जसे हम गाडी म ही जन्मे थे और गाडी म ही मर खप जाएगे।

खैर बगलार पहुचे तो एक लम्बी सी बैरक मे हमारे अटची बिस्तरे रखवा कर हम इनीशियल किट देने के लिये लाइन म खडा कर दिया नीली खुली निक्कर, नीली जर्सी नीला गम जुराबे और बडे फौजी बूटा के साथ मग प्लेट और ईश्वर के

था जिसके अन्दर औरों के सन्दूक भी होने के कारण हम उस
ताला नहीं लगा सकते थे। मेरी भूआ के ब्याह के बाद
सन्दूक उसमें से निकाल लिया गया, और कमरा वह खुल
गया।

इस तेरह कमरों वाले मकान में हम चार टब्बर कि
शहरियों की तरह रह रहे थे, मेरे ताऊजी, चाचा जी, हम,
हम सबके बीच पिता जी के चाचा जी। एक कमरा जिसमें
सिर्फ अनाज रखा जाता था, अनाज वाला था, एक उपला
एक भूसे का, एक हमारे सन्दूकों का। एक बिल्लियां
कमरा था जिसमें किसी जमाने में बिल्ली ने बच्चे दिए थे।
चाचा जी के परिवार के पास था। ऊपर के दो चौबारा
एक ताऊ जी का और दूसरे चौबारे और साथ ऊपर ही
छोटे कमरे में हम सबके खानदानी रहते थे जिन्होंने नीचे
दो चार कमरों का सिर्फ आधी मिल्कियत जताने के लिये
लगाए हुए थे। तीसरी मंजिल वाला चौबारा जिसे सब म
कहते थे वहां एक पटवारी अपने टब्बर के साथ रहता था,
कमरा ही मुफ्त नहीं दिया गया था, बल्कि उसका दूध जल
और छिट पुट भी हमारे घरों के जिम्मे थी।

सब नये नये अलग हुए थे, पर खेती अभी साझी थी।
रहने वालों के लिये रसोई की कोई तकलीफ नहीं थी पर
का हिस्सा क्योंकि सारा छता हुआ था बस घर के दर्मियाने
जंगला था जो नीचे रोशनी पहुंचाने का एक मात्र साधन
सो हम दोनों नीचे वाले घरों की रसोई की बहुत तकलीफ
भूस वाली कोठरी को जाते हुए एक बरामदा-नुमा कमरा
जहां हमारी दोनों घरों की रसोइयां थीं—हमारी जरा जग

नीचे, और चाचा जी की अन्दर की ओर जहा आग याद म
जलती थी, हमारे घर म धुआ पहुंच भर जाता था और हम उस
धुआ से घबराते हुए बाहर भाग जाते थे। जाड़े तो किसी न किसी
तरह धूए धुआर म बीत जाते पर गर्मियों म छत के नीचे रजाई
करने और सोने की समस्या शहर की तंग गलियों से ज्यादा बढ
चढ कर होती। गाँव का गुलाबा इस घर म एक सपना था।
रात को हम रतजगा करते यानी एक बुजुर्ग मार्दनामा के आगन
म सोते थे जहा मेह आने पर हम सतालीस के दंगो वाली आपा
धापी पड जाती बहुत बार किसी बात को लेकर तू-तू मैं मैं होने
के कारण उस किले की बजाय अलग-अलग घर बनाने की खुसर
पुसर मैंने सुनी थी —पर फिर शान्ति हो जाती क्योंकि घर की
आर्थिक हालत अब वह नहीं थी जो इस मकान के बनने के समय
थी। मैं दसवीं पास करके अपने 'कमरे' की तलाश मे 'एयर
फोर्स म भर्ती हो गया।

पर वहा पहुचने के बाद हालात घर से भी ज्यादा मुश्किल
दिखाई दी। मैं अपने बैच का सबसे पहला ट्रेनी था और मेरे
साथ था शिमले से ही भर्ती होकर आया हुआ धरमपाल डोगरा
पहले तो शिमले से बंगलौर तक का सफर बौखला देना है, खास
कर उस आदमी को जिसने अमृतसर भी अमावस के बहाने देखा
हो। भारत के एक कोने से दूसरे कोने का सफर ऐसा लगता था
जैसे हम गाडी म ही जन्मे थे और गाडी म ही मर खप जाएगे।

खैर बगलौर पहुचे तो एक लम्बी सी बैरक म हमारे अटैची
बिस्तरे रखवा कर हम इनीशियल किट देने के लिये लाइन म
खडा कर दिया, नीली कुर्ती निक्कर, नीली जर्सी, नीली गर्म
जुराब और बडे फौजी बूटो के साथ मग, प्लेट और ईश्वर के

छोटे भाई जसा चमचा । घर से हवाई जहाज उडान क सुपन लकर आए थ और यहा काटू न बनकर बठ गए थ । दिन दिन वह बैरक भरन लगी । देश के सार रिक्रूटमट सेन्टरो म दा दो चार चार लडके आत गए और इस कमरे म हम काई पचास ट्रेनी इक्ट्ठे हा गए । स्कूलो से निक्ले हुए सत्रह अटठारह साल के लडके बेढब्बे से हुलिय मे हैरानी से एक दूसर को देखत थ । एक की बोली दूसरे की समझ म नही आती थी । सबके चेहरा पर एक अजीब-सी उदासी लिपी हुई थी । और कई मुझ जैसे तो घर की याद से सुबकने तक पहुच गये थ ।

फिर ट्रेनिंग शुरू हुई । जिस पढाई के डर क मार भर्ती हुए थे वही पढाई अब दुगनी होकर सामने फली पडी थी । काई नौ महीने मे तीन बरके बदल कर कभी हस्पताली लोहे की चार पाइयो और कभी धरती पर विराजमान होकर, हम क्वारी से ब्याहता' हा गए यानी पूरे 'फुल-फ्लज्ड' एयरमैन बन गए । एक अजीब-सी कैद से मुक्ति महसूस करते हुए अपन कमरे' की तलाश मे नागपुर पहुच गए । मेन्टनेन्स कमाड तब कानपुर स बदल कर नागपुर आया हो था और नयी बैरके बनन वाली थी । रहने की इतनी तगी थी कि छाटे-छाटे कमरा डगरा की तरह आदमी भरे हुए थे, या चार चार पाच-पाच एक एक तम्बू म रखे गए थे । नागपुर की गर्मी और ऊपर स रलवे स्टेशन के एकदम सामने हमारा कम्प, दिन मे ही 'कमरा ता दूर ईश्वर का भूलने की नौबत आ गई थी ।

एक दिन बहुत जार से मेह बरस रहा था । मरा निवास तीन और साथिया के साथ एक तम्बू म था, और उस दिन इतनी बारिश हुई, इतनी आंधी आई, कि लगता था जस हमारे

तम्बुआ के साथ साथ आज यह धरती भी साबुत नही बचेगी। हम तीन जन उस तम्बू म सिकुड हुए पडे थे—एक मराठी लडका एम० एम० मोनाजी, एक बगाली आर० के० डे० और एक मैं—हम तीनो एक साथ बगलौर में ट्रेनिंग करके आए थ— चौथा लडका धरमबीर डयूटी पर था। चारा तरफ ऐसा भक्कड था कि हम न अपने बिस्तर बचा सके, न कपडा के ट्रक अटची। मेरे दिमाग म उस वक्त जा बात आई वह आज तक नही भूली है कि भर्ती हान के समय हम जमा का दिमागी स्तर न हाने के बराबर हाता है, न हम यह पता होता है कि हम कहा और क्या भर्ती हा रह हे, बस सुपन के घोडा पर सवार अगर शायद एयर फास म काम न बनता तो फौज म भर्ती हो जाते और हमारी उम्र ऐस तम्बुआ म जगला विराना म भटकते रहते और ट्रेन्चे खोजते खोजत अपने-अपन कमर खाज रहे हाते। देश सेवा की बात एक किताबी, या सरकारी और गैर-सरकारी नताओ की बात है। कौन माई का लाल देश के लिए भर्ती होता है ? जब और कही काम नही बनता इधर की ओर मुह करना पडता है। उस समय मुझे घर की इतनी याद आई कि जी करता था जोर-जोर स रोए जाऊ।

घर गए एक साल हान का आया। बगलौर म हम से वादा किया गया था कि पेरेन्ट यूनिट के जाते ही आपको छुट्टी मिल जायगी। पर यहा पहुचकर पता लगा कि वहा का खुदा और यहा का खुदा भाई भाई नही है। आखिर बहुत मिन्नतें, करके कुछ आसू बहाकर, एक महीने की छुट्टी मजूर करवा ली, पर किस्मत ने साथ नही दिया, छह सितम्बर से पाकिस्तान से लडाई छिड गई। नागपुर को लडाई का खतरा नही था, पर

मेरा गाव सरहद से सिफ छह सात मील दूर था और इस हालत म छुटटी से इन्कार

खैर बात कमरे मे दूर चली गई है, छ्यासठ के शुरू में हमन नये बन वायु सेना नगर मे प्रवेश किया। यहा स और बगलोर की बैरका म सिफ यह फक था कि यहा लकडी की चारपाइया थी, और साथ म एक एक कबड भी मिला था। बाकी वही मच्छरदानी की हद तक महदूद कमरा जो किसी तरह भी "आपका अपना" नहीं था, सो सकन म ज्यादा वहा किसी से कोई पर्दा नही था।

बहुत बडी बैठक थी जिसे आठ हिस्सो मे बाटा हुआ था, चार नीचे और चार ऊपर की मजिल पर। हर कमरे म हम तेईस चौबीस हवाई जवान "रैन बसेरा" करते थे। वडा अजीब सा माहौल हाता था वह भी यह जरूरी नही था कि आपके दोनो आर रहन वाले साथी आपके हम ख्याल हा। चारपाइयो का फैसला भले ही अगुला मे नापा जाता था, पर विचारा का आदतों का फासला माला तक का नही, उम्रो तक का होता था। कई बार ये दो फुट के फ़ासले पर रहने वाले सज्जन सालो तक एक दूसरे से बातचीत तक नहीं करते।

शाम को अगर कभी कोई पूरी बैरक का चक्कर लगाता उसे एक अजीब कौतुक देखने का मिलता—तिवारी जी कसरत कर रहे है तो त्रिपाठी जी गीता का पाठ कर रहे है। पी० यू० रेड्डी इलैक्ट्रिक गिटार बजा रहे है तो दिवाकरन शराब के लिए गिलास इकट्ठे कर रहा है। माहन जीतसिह 'गुटका लिए बठा है, ता रधावा साहब पी० के० बाजवा साहब से गाली गलौज कर रहे हैं। मिश्रा कथरिया, शर्मा और जोसी साहब

ताश लेकर बैठे हैं, तो ऐसी ही एक टोली "कान्फिडेंशिअल ऐड वाइजर" या "आजाद लाग" के गिद घिरी हुई है —और ऐसे माहौल मे कोई मेरे जैसा कहानिया कविताओ पर जार आजमाई कर रहा हाता।

कालिज के होस्टलो की जिन्दगी भी अजीब होती है पर वहा पढाई का सहम तलवार की तरह हर वक्त सिर के ऊपर लटका रहता है, साथ ही हर महीने घर वालो से पैसे मागने के लिए वहाने गढने पडते हैं। पर यहा मवन अपनी अपनी समझ के अनुसार अपना निशाना सर कर लिया जाता है अब बिना कुडे हाथी की तरह आजाद थे। ऐसे माहौल म मेरा 'कमरे का सुपना भी फीका पडने लगा। जहा नागपुर के वदनाम बाजार 'गगा जमना" हस्पताल की नर्सों से पेचीदा सबध या एन० ए० डी० और मेडिकल होस्टल के चक्कर ही वहुतो के लिए बचते थे।

मेरे जेहन मे उगा हुआ लेखक मेरी समझ स पहल का है पर आज तक इसे वह माहौल वह कमरा नसीब नही हुआ जहा इसे परवान चढाने के लिये कुछ किया जाता। नागपुर मे लिखने के जुनन के दिनो मे मेरा कमरा जगल के धुर अन्दर एक बर-गद का पड था।

शादी के बाद अमृतसर के कमरे की समस्या आम किराय दारी के किस्म की थी। उस के बाद बागडोगरे के रेलवे के क्वाटरो म एक कमरा, और बाद म अपने डिपाटमेंट के क्वाटर मे एक कमरा लेकर रहने का अनुभव नरक से होकर लौटने के समान था। एक ही कमर मे 'सब कुछ' पीप और डिब्बे खडे करके बनाई हुई रसोई, और ट्रक एक सीध म रखकर बनाया हुआ

सोफा। उसी कमरे म जाया गया, उमी मे बच्चे उसी म सिरहान के पास किताव रखे हुए लेखक। जसे सारे टब्बर को कद की सजा दे दी गई हो। इन कमरो ने मुझे कई कहानिया दी, यहा तक कि मेरा नाविल काली मिच की बेल' भी इन्ही कमरो की देन है।

यही मुझे वह कमरा नसीव हुआ जिसे फौजी जवान मे 'अपना क्वाटर' कहते है। दो कमरो का सैट, साथ मे रसोई और गुसलखाना। क्वाटर के अन्दर पाव रखते ही मेरे अन्तर के लेखक न बडा सन्ताप सा महसूस किया कि एक कमरे में बच्चा समेत बीवी रहेगी, और एक कमरा लेखक का 'अपना होगा'। पर अगले ही दिन उस सन्तोष की हद सीमित होती हुई लगी। क्वाटरो मे आम चलन यह था कि एक कमरा गैर कानूनी तौर पर अपन ही डिपाटमेट के किसी कमचारी को किराये पर दे दिया जाता था, जसे कि कमरा मिलने मे पहले मैं रहता था। सो, हमारे डिपाटमट के लोग अपना 'हक' समझते हुए एक कमरा लेने के लिये तुले हुए थे। कई निकट मित्रो को नाराज करने पर भी जब वक्त वेवक्त दरवाजा खटखटाए जान से न रुका, तो मुझे घुटने टेक देन पडे। साथ ही पत्नी भी आते हुए तीस पैंतीस रुपयो को खोना नही चाहती थी। उनके खयाल के अनुसार मैंने लेखक बनकर कौन सा जग जीत लिया है। कहानी छापने वाले पसे तो दूर मैगजीन तक नही भेजते। जो दो किताबें छप वाई हैं वह भी पस देकर । और हम फिर एक कमरे तक सीमित हो गए। इसी तरह बनजारा जैसी जिन्दगी कुछ साल आगरे म बिता कर पन्द्रह साल की कद पूरी की और अब अपन जल्दी मकान की ओर लौट आया हू कि शायद यहा कोई कमरा

अपना बन जाए ।

नौकरी छोडने से पहले मैं और देविन्दर (मेरी पत्नी) अमृता जी के पास उनसे मिलने के लिये गए तो अमृता जी की सब से पहली बात यही थी 'देविन्दर ! दीदार साहब का नौकरी मत छोडने देना। महीने के महीने तनख्वाह आ जाती है, घर की रोटी चलती है। लेखक लोग व्यापार नही कर सकते।" पर उस वक्त मुझ पर मेरी कहानी 'मौसी की बेटी' का पात्र जीवन सिंह सवार था, और मैं कमरे का ही नही एक घर का मालिक बनने वाला था।

मकान में अब तेरह कमरों की बजाय पांच कमरे है परिवार भी बडा नही है कोई द्वत नही है फिर भी मुझे इनमे से कोई कमरा अपना नही लगता। ऊपर वाला चौबारा मैंने अपनी पसन्द के अनुसार सजाया है, बाहर से आने वाला हैरान भी होता है देखकर फिर भी इद गिर्द का शोर किसी का बे झिझक मेरे कमरे मे आ जाना, फालतू लोगो का घटो चलने वाला बेसिर पैर की बातों का सिलसिला,—मुझे इस कमरे को अपना कहने से रोकते है और मैं उस कमरे की कल्पना में जाग जाता हूं जिसमे बडी सी लिखने की मेज हो, और ईश्वर तक को भी मेरे कमरे मे आने की इजाजत न हो !

प्रेम गोरखी (१९४७)

मेरा कमरा   मेरा कमरा   मेरा कमरा ! एक टुनकार है जो साय-साय करते मेरे कानो से दूर अटकी खडी थरथरा रही है। एक पवन है जो मेरी आखा की पुतलियो से सरक कर मेरे पोरो पर आ बैठी है, चितकबरी तितली की तरह। और मेरा आपा धरती मे दबा हुआ भी शून्य मे उडता हुआ बेतहाशा हाथ मारता हुआ उन क्षणो का पकडने की कोशिश करता है जा मेरी यादो की मुडेरो पर मोरो की तरह बैठे हुए पख फडफडा रहे हैं   उडान भरते हैं और उड उड कर बैठ-बैठ जाते हैं।

बरसा की छोटी-सी गठरी आज तिनका तिनका हाकर बिखर गई है   आज जब सुपन न हकीकत बन सके हैं, और न क्यारो के फूलो स फल ही विकसित हा सके हैं। और मेरा चिन्तन उस कमरे की नकल का रेखारित करते करते बडा होता जा रहा है जहा चार ईंटा की ओट हाती है, पर उसके ऊपर धुए की एक लकीर फिरती हुई कालख मे बदल जाती है —और उस कालख म कही —मेरा वजूद मौजूद है।

बरसा की इस छाटी-सी गठरी के बिखरे हुए तिनका म से कुछेक का आवारा डगर मुह मार गए   कुछक का जानवरा न

सभाल कर घासला म जा रखा और कुछेक हवा म मडराते हुए गदे जोहडा म जा गिरे। और उन बरसा की गाथा मूल से ही बिसार देना मन को बिलकुल नही भाता और बरस भी वह जब लिखने के मैदान म अभी गहू की बालिया ही फेंकी गई थी अभी तो आगे सफर था ढेरिया लगनी थी उडान होनी थी, और फिर कही दाना का मुह देखना था। और लिखने के वह दिन जब स्कूल की पढाई बीच म ही छोड कर बाल नाथ के टीले का राही बनना चाहा था पर पिता ने साबुन फक्टरी के मालिक के हवाले कर दिया था। छोटे से कमरे मे राता पढा करता और पता नही क्या कुछ लिखता रहता। उस छोटे-से कमरे म साबुन तालने वाले छोटे छोटे तराजू पडे रहते थे बैरोजे के छोटे पीप मिलिकेट और तयार साबुन के बडे बडे पक करने वाले कागज और धूल से भरे हुए थैले और मच्छरो के ढेर, और जाले से भरी हुई छत। पाच महीने वहा काम के दौरान मैंने बहुत से नाविल पढे थे जिनम ज्यादा जासूसी थे, और जो तब मुझे बहुत अच्छे लगते थे। और मैं गव से कह सकता हू कि वहा भट्टी झाकते हुए मैंने अपनी कलम स जो सब से पहली रचना उपजाई वह एक एकाकी था वही मेरा पहला लिखने का कमरा था, बेहद गदा जिससे मुझे नफरत भी थी और मोह भी। और वहा स जल्दी ही छुटकारा पाकर मैं नाना के पास गाव चला गया था।

नाना के घर म क्या था—दीवारा के साथ लगे हुए घडे और हाडिया जो दाला गुड शक्कर से भरी हुई थी या फिर बडे दालान मे गाडी हुई खड्डी, लम्बी-सी सूत की तानी आगन म फलाई की ठडी छाया, और गाव के पैरा मे बहती हुई नदी।

उन दिनों का स्वर्ग लौट कर नहीं आया। यह सब कुछ मेरे लिये सुविधाजनक था। पर यहां किताबें नहीं, नाना नानी का प्यार और विधवा मौसी की गालियां थी। शाम ढलते छोटी सी खुरपा लेकर नाना के साथ घास खोदने के लिये जाता और नदी की रेत में से घोंघे सीपियां इकट्ठा करता—यह सब कुछ मेरे एक कमरे का ही हिस्सा थे—छत भी और नरम फर्श भी।

और फिर प्रति घिनौने दिन जब ऐसा लगता था कि जहां पर धरती धरती कांप कर फट जाएगी, दीवारें ढेर हो जाएगी। और दिनों में मैं जो भी लिखता था उससे मुझे स्वयं भय लगता था। और यह कुछ मैं कहां लिखता था, उसके बारे में याद करना आज अच्छा लगता है, और उन दिनों की याद आते ही आंखें मुंद जाती हैं—एक छोटी-सी कच्ची कोठरी छत में से आठों पहर झड़ती हुई मिट्टी, और डंगरों का गंद। कच्ची दीवारों के कोनों में अनगिनत चूहों के बिल थे, जहां कभी कभी सांप भी आकर छिप जाते थे। मच्छर और मक्खियों की भिनभिनाहट। बिना तख्तों की एक अलमारी थी जिसमें पच्चीस तीस किताबें थी या उनके नीचे छिपी हुई टिड्डियां। एक कोने में कृपाण गंडासी और लाठियां पड़ी रहती थी, खुरपे, खुरपियां और दरातियां में पिता का पीतल का हुक्का। आधे हिस्से में भैंस बंधती थी जिसकी जगह कभी गाय ले लेती, कभी बछड़े। दीवार के साथ दीवे वाले आले के नीचे मैं चारपाई बिछाता था—दरवाजे के आगे लटकते हुए टाट में इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह बाहर से आने वाले तेज ठंडी हवा के झोंकों को रोक सकता, और चार घड़ियां चैन से सोकर गुजर जाती। इस हालत में लिखना पढ़ना ही लाभदायक काम था। दिन के चढ़ने तक बैठा रहता था एक

अलग ही दुनिया म खोया हुआ । डगरा के खर्राटे और गदी बदबू, गाबर की सडाद, और पेशाब की तीखी तेजाबी गध । मुझे अपन कमरे" का यह कुछ कभी भी अजीब नही लगा था । इस सबको अगर मै नफरत भी करता तो क्या ? अपन ही घर से ? 'कुल्ली यार दी सुरग दा झूठा अग्ग लावा महलानू '* मरने वाला चाचा अमीया कहा करता था ।

और इस छाटी-सी काठी के अन्दर जा कारगुजारी लिखन के अलावा चलती थी उसकी बात कहते ही बनती है । दा चार कहानिया नागमणि मे छप गई थीं । अमता का बडा उत्साहवर्धक पत्र आया था ' मैं बाहर के देश सफर के लिय जा रही हू मरे लौटने तक नावलेट लिखकर रखना । और इन्ही दिनो अजीब तरह की अपनाई हुई आदतो को मैं त्याग रहा था । वह रात बडी भयानक थी । मैं नावलेट बूढी रात और सूरज का अन्तिम भाग लिख रहा था जिसम मुख्य पात्र जुल्म का शिकार होता है और बदला लेने के लिये हथियार उठा कर घर से चल निकलता है । मै दीवे की लौ म नग बदन बैठा अपन आपमे अपन पात्र मे खोया हुआ था । मै नही जानता था कि काने मे बधी भैंस मूत्र से भरी हुई पूछ से मुझ पर और अपने इधर-उधर की जगह छिडकाव कर रही है । रात आधी बीत चुकी थी, तभी टाट उठाकर कोई अन्दर आया । अपना यार दास्त भालू था । आज मौका है, भई वह नक्ले देखने लाली गया है नहर पर घेरे उसे उठ चल' वह खडे खडे ही बाला । गाव मे ही एक और हम उम्र का घेरन की वह बात कर रहा था जिसन महीने भर पहले भालू के छाटे भाई का शहर मे घेर कर

*चोर की झोपडी स्वग के हिलोरे जसी महलो को आग लगाऊ ।

पढ़ने लिखने का काम होता था जहां कई बार रात को कहानी लिखते समय आने वाले ग्राहकों को वापस लौटा दिया करता था और इस तरह कम पैसे कमाने के कारण मालिक क्षोभ उठता था। वह मन मार कर रह जाता, जब सबेरे तड़के जाता तो कम रुपये देने पर उसी पल भरी कितावो और लिखे हुए कागजों को खिड़की से बाहर फेंक देता और बार बार सामने हुए दरवाज पर थूकता रहता। इस पट्रोल पम्प पर काम करते हुए मैंने एक भूल आपबीती जगबीती अफसर 'मा मां है' पिता, पिता नहीं मा बेटी जैसी कहानिया लिखी और इन स्थितियों के माफिल आयल डीजल और पट्रोल की गंध अभी तक मेरे हाथों का सरमाया है जिसने मुझे सृजन पथ के लिए आगे बढ़ाया।

साहस तो सदा कुछ बढ़िया कर गुजरने के लिए करता रहा हूं, पर पहले की अपेक्षा आगे कोई अच्छा कामकाज नहीं मिला। लिखने का भूत निरंतर सिर पर सवार रहा है, और लिखने के लिए समय समय पर जो भी जगह मिली है समय के अनुसार कुछ बुरी भी नहीं थी। यह वह कमरा जहां काम करते हुए मैंने व्यस्त आदमी 'छोटी बहू' छोटा-सा लड़का आदि कहानियां लिखीं मार्कफेड कैनरीज का बहुत बड़ा हाल था। इस लम्बे चौड़े हाल में मेज कुर्सियों के बजाय प्याज मटर, आलू, और साग स्टीम के जरिये सुखाने वाला प्लाट लगा हुआ था, जिसकी पांच लोहे की वल्टो पर अलग अलग प्वाइंट पर स्टीम देने की मेरी ड्यूटी थी, और यह काम करते हुए दीवार के बीच लगे हुए हैंडल पर कंट्रोल करने के लिए हर समय चौकन्ना रहना पड़ता था। वहां रात के दो बजे ड्यूटी पर आना पड़ता था। वहीं

का तर-नर कर पार जाना पडता था, और गढे खोद खोद कर पोल खडे करने पडते थे। और ऐसी मशक्कत करते हुए जब भरी दुपहरी म घटे दो घटे आराम करने के लिय बैठता था ता कागजों का भाला उठाए हुए औरो से अलग दूर जाकर बठता था। अपन कमरे की अदृश्य दीवारो के बीच। और या फिर रात गए रोटी पका खा कर जब खाली होता था किराये पर ली हुई कोठरी के एक कोने मे दीवा जलाता था। ये दिन माहिलपुर के पास पालकी गाव म बीते या नवा शहर के पास गाव हुसरा म। और ऐसा काम करते हुए कभी कभी अपने अफसर लाइन सुपरिंटेंडेंट के कमरे मे बैठकर पढने का भी मौका मिल जाता था बहुत सारी किताबो से भरी हुई मेज और गद्दी दार कुर्सी। पर यहा बैठने के लिये जो बेगार करनी पडती थी उसका जिक्र भी करते ही बनता है—हमारे ही बीच का एक लडका लाइन सुपरिंटेंडेंट का दो समय का खाना पकाता था, बतन मांजता था, कपडे धोता था और फिर बाहर हमारे साथ भी काम करता था। जिस दिन वह लडका नही आता था तो उस गाव मे रहने के कारण वह सारे काम मुझे करने पडते थे। खाना खिलाकर बतन माजकर 'साहब' का विस्तर बिछाता और सोने स पहले उसकी गजी चाद पर बादाम रोगन की मालिश करता वह शराब के नशे में कई बार मुझसे बार बार कहता आए साले प्रेम! मेरी कहानी लिख लिख मेरी कहानी सुना मैंने क्या कहा " वह गालिया देते हुए जोर-जोर स बोलता तो अडोस पडोस म दीवारो के ऊपर सिर उग आते। कई बार उसके घर जाकर मशीन म चरी काटनी पडती। जिस घर से उसके लिय दूध आता था— दूध दूहने वाली औरत का घर वाला अमरीका गया हुआ था।

गैरहाजिर होने या पिछड जाने की सूरत म दिहाडी मारी जाती थी और इसी डर स शाम का ही आकर फक्ट्री क बरा-मद म बैठ जाता था। और वहा बिजली की राशनी का मै फायदा उठा कर पढ लिख लेता था। वही इस लिखने की मनहूस बीमारी के कारण विचारा म डूबे हुए मुझे हडिला की याद ही नही रही थी और वल्व फटने के कारण जोरदार धमाके न फक्ट्री को कपा दिया था। मारे कमिया के ख्याल म मैं गाढी भाप म झुलस कर मर चुका था पर मैंने हौसले स काम लेते हुए नाली मे से भीगी हुई बोरिया उठाकर उन्ह टूटे हुए वाल्व के ऊपर फेंक दिया और दुघटना से बच गया था, और मेरे लिखने के कमरे की हवा वैसी की वैसी सलामत मेरे गिद फैली रही थी। मेरे हाथो मे थमी हुई कलम डोली नही थी, और मै एक कदम आगे बढ आया था।

कई जगह मेरा लिखने का कमरा कुदरत का झूला-सा भी बन गया जहा कुछ भी बनावटी नही हाता। यह ६७ ६८ के दिन मेरे मन के आगन म सलीबे गाड गए है जिन पर अकित आयत मेरी कठिन जिन्दगी म मशाला का काम देती हैं। तब मेरे लिखने के कमरे की दीवारें तेज सुनहरी धूप की होती थी, जिसके अदर बिछा हुआ पीली सूखी घास का पलग बहुत सख्त होता था। उसम बडी तपिश हाती थी। इस कुदरत के झूले का झूलते हुए मैंने डेढ दजन कहानिया लिखी हागी। जा ज्या की त्यो मेरे पास सभाल कर रखी हुई हैं दस्तावजा की तरह। वह दिन थे जब लोहे और सीमट के बडे-बडे पोने कमजोर कधो पर ढोने पडते थ, डगगा की तरह छाता के गिद रस्से बाध कर मीला तक तार खीचकर ले जाने पडते थ रास्ते म आन वाले नाला नदिया

का तर-नर कर पार जाना पडता था, और गढे खोद खोद कर पोल खडे करन पडते थे। और ऐसी मशक्कत करते हुए जब भरी दुपहरी म घटे दो घटे आराम करने के लिय बैठता था तो कागजा का झोला उठाए हुए औरो से अलग दूर जाकर बठता था। अपन कमरे की अदृश्य दीवारा के बीच। और या फिर रात गए रोटी पका खा कर जब खानी होता था किराये पर ली हुई कोठरी के एक कोने मे दीवा जलाता था। ये दिन माहिलपुर के पास पालकी गाव म बीते या नवा शहर के पास गाव हसरा म। और ऐसा काम करते हुए कभी कभी अपने अफसर लाइन सुपरिटेंडेंट के कमरे मे बठकर पढने का भी मौका मिल जाता था बहुत सारी किताबा से भरी हुई मेज और गद्दी दार कुर्सी। पर यहा बैठने के लिये जा बेगार करनी पडती थी उसका जिक्र भी करते ही बनता है—हमारे ही बीच का एक लडका लाइन सुपरिटेंडेंट का दा समय का खाना पकाता था बतन मांजता था, कपडे धोता था और फिर बाहर हमारे साथ भी काम करता था। जिस दिन वह लडका नही आता था तो उस गाव म रहने के कारण वह सारे काम मुझे करन पडते थे। खाना खिलाकर बतन माजकर, साहब का बिस्तर बिछाता और सोने से पहले उसकी गजी चाद पर बादाम-रोगन की मालिश करता वह शराब के नशे में कई बार मुझसे बार बार कहता "ओए साले प्रेम! मेरी कहानी लिख लिख मेरी कहानी सुना मैंने क्या कहा वह गालिया देते हुए जोर जार से बालता तो अडास पडास मे दीवारो के ऊपर सिर उग आते। कई बार उसके घर जाकर मशीन स चरी काटनी पडती। जिस घर से उसके लिय दूध आता था— दूध दूहने वाली औरत का घर वाला अमरीका गया हुआ था।

कभी कभी वह खुद दूध लेकर आ जाती तो 'साहब खु'
जाया करता था, इसलिये उनके काम भी कभी कभी करने
और इसी तरह बेगार के पानिया का पार करत हुए जब
लिखन के लिये कुछ पल नसीब होते तो कथा पर पडा हुआ
गकाएकी फूल बन जाता था।

और इन लिखने के कमरा म सिफ एक और जगह
है जहा उठते बठने म वणन योग्य और लम्बे अर्से तक लिख
हू। वस ता 'अजीत' अखबार का दफ्तर मेरी जीविका का सा
रहा है, पर इससे अधिक मुझे वहा लिखन की सुविधाए प्र
रही हैं। ढेर सारा काम, प्रूफा के बिना बाशा जोडना और
रखे हुए टेलीप्रिंटरा की दिमाग चट टिक टिक बहुत रात
खाली होना और फिर एक कोने में लगी हुई मेज पर अधिक
जमाकर लिखने की ललक। जाडा में हीटर मिल जाता था
गर्मिया मे पखा। यहा काम करते हुए मेरी कहानियो की कित
छपी, दो नावलट लिखे और कई कहानिया लिखीं।

और आज एक कमरे का सकल्प ध्रुव तारे की तरह उद
आखा से दूर सुपने की तरह, साथ साथ चल रहा है, आज
कि जालधर के कच्ची कोठरी की मिट्टी झडने-वाली छत के नी
से, हुक्के की सडाद से भरे घर की चारदीवारी से निकल क
ऊची पत्थर जड कोठिया म आ बैठा हू तो लिखन का कम
यहा भी हाथा की पकड मे नही आ सका। वसे तो बिजली
तेज रोशनी आठो पहर परा तले बिछी रहती है, पर इसम के
ताजगी महसूस नही हुई सब कुछ बासी-बासी थका-थ
है। और यहा मिले हुए कमरे मे मुझसे बठा नही जाता प
खेता की राह पर चलते हैं किसी मन भाती खूबसूरत जगह

तलाश मे। ऐसी जगहें जिनकी याद मेरे कधो जितनी ऊची खडी है—चुप शात, वैष्णादेवी के पहाड के चरणा मे वहती चरण गगा का किनारा, हुसैनीवाला के पास फैली हुई मसलुज के पार सरकडा के भुड, बनारस के चरणो मे वहती गगा के परले किनार की सफेद रेत जहा बैठकर 'एक टिक्ट रामपुराफूल' कहानी लिखी और भयानक रातो मे कावा के पत्तन के पुल के पास शीबू मछेरे की झोपडी के ठडे दीवे की लौ म बठना जहा रहते हुए मैंन 'ईश्वर का भाई' 'यार बलोच' 'बदला' 'गुलाबी लडकी' जसी कहानिया लिखी। प्रीत नगर मे मुख्तयार का घर जहा 'खैरा हार गई' 'फौजी लगरी और दुश्मन लडकी' 'दूसरे चौक तक' जैसी कहानिया लिखी, और जिस कमरे मे मेरा आपा कुछ भी न होते हुए, बहुत कुछ विकसित हो गया था और उसमे से बहुत कुछ उग आया। और फिर मालवे के शाय शाय करते मवेशियो की बाडा की ममस्पर्शी गाथा जहा बहती हुई हवाए चार दीवारी बनकर खडी हो जाती थी, जहा बेशुमार शब्दो के भोके मडलाने लगते, और जहा कच्च चूल्हा पर बार-बार तेज तीखी चाय बनती रहती, जर्दे की पुडिया खुलती, नसवार की चुटकिया नाका को काला करती रहती तौबा! मैं कहा पहुच गया हू वसे यह मेरे लिखने के कमरे का ही तो परिवश है।

अबकी घडी—अब जबकि मैं यह पक्तिया लिख रहा हू मैं दश के आधुनिक शहर के सूबे की राजधानी मे बठे हुए भी जसे अपन नाना के गाव की वीरान जगहा म बैठा हुआ हू जहा राता का गीदड बोलत हैं और दिन मे खरगोशा का शिकार खेला जाता है। दखा! मेरा लिखन का कमरा कहा बन कर खडा हुआ है मेरे माथे क सामन बसौली के पहाड के परे

सुनहरी और लाल गुलाबी उदय होत सूरज की किरनें अम्बर का चूमती हुई उठ रही हैं, और मैं उजडे हुए कुए की मन पर बठा हुआ मेरा कमरा लिख रहा हू। मेरे पीछे की ओर एक घाडा घास चर रहा है जिसकी दाहिनी टाग किसी रोग का शिकार हाकर आगे का बढ कर पैर से बुरी तरह टेढी हो गई है। घोडा जब हरी घास के बुडक भरता है तो तिड तिड करके टूटती हुई तिनका की आवाज जिन्दा रहने का एहसास कराती हुई लगती है। दाहिने हाथ पर हवाई अड्डे के ऊपर उडान भग्ने वाले हवाइ जहाज की वातावरण का गुजा दन वाली आवाज इतने सवेरे बहुत ऊपरा लगती है, और एक छोटा सा लडका कधे पर टोकरी उठाए हुए आम के पेडो के नीचे से आम उठाते हुए खुद खुन तितली की तरह उडता फिर रहा है। मेरी बाईं ओर फैला हुआ बडल गाव इतना दिन चढ आने पर भी सोया-सोया लग रहा है। और मेरे पैरा की सीध से परे बर्मी की आर कभी कभी मेरी नजर कूद कर चली जाती है जहा बहुत एक बडे से बिल के बाहर काटा में फमी हुई, हवा स थरथरा रही, साप उतारी हुई केंचुली बर्मी का और भी भयभीत कर रही है। और इस तरह आज के मेर लिखने पढने के कमरे मे फला हुआ मेरा आपा आप देख सकते है कमरा जो मेरे आपे के एक खाने के समान है

और आज जब सूरज उगल भर ऊपर सरक आया है और बीते हुए बर्षों की कशमकश के बाद मैंने आपका जहा लाकर खडा किया है, यहा आपकी नजर जरा गहराई म जानी चहिए और आप देख सक्त हैं—कण-कण करके जुडा हुआ एक टेढा मेढा कमरा आपके सामन खडा है जिसका नाम मैं की जगह आपन प्रेम गोरखी रखा है। और मेर मेहरबानो ! इस कमरे

का काई भी छन नही है, पर मह और आधी के दिना म आपा छिपान लायक जगह जरूर है इसकी चारा दिशाओ की आर खुलने वाले दग्वाजे कभी व द नही हुए। यहा काई भी ऐसी परी नही ह जा आपक आन स पहल ता हस पडे और बाद म रा पडे। यहा ता चारा दरवाजा म गारखी के महनती हाथा की कसावट है। इसकी दीवारें कभी झडेंगी नही, न ही इसे कल्लर का डर है, न दीमक का क्याकि इसके निर्माण मे काई उधार की चीज नही है आपकी हुकारी का सेंक है आपके हाथा स लगाए गए बूटे के फूला की महक है।

मुख्तार गिल (१६४७)

मैंने घर नही बनाया। मुझसे किसी ने कहा था "मुख्तार को शनाख्त नही, वह घर कभी नही बना सकता उसकी फित रत ही नही है घर का पछी वन जाने की ' "पिंजरे का पछी' मैं नही बन सका। ठीक है, मैं भटकता रहा पर किसी का क्या ?

फिर भी अतीत की सिसकियाँ और खामोश कहकशा इतनी गहराई तो है, इतनी तडप ता है कि मैं यह मानने के लिये मज बूर हू कि अतीत ही मेरा सरमाया है। सब कुछ है। बेशक मैं वतमान वादी हू, पर सिफ खाने, भोगने के लिये, किसी खडहर जैसी शिददत से महसूस करना मुझे नही आता।

व्यथ ही अतीत मे गहरा उतरता जा रहा हू। यह भी जानता हू जिस या जिनके हाथ मे चप्पू हैं वही नाव का डुबा देना चाहते हैं। पर मैं उसी जिद पर अडा हू —अतीत का दरिया तैर कर उस पवत की छाया के नीचे वाले किनारे जरूर जा लगूगा, कभी न कभी, जहा नीलू है। मेरी नीलू ! इस प्रश्न चिन्ह के उत्तर के लिये मैं जरूर हाजिर हूगा—पर फिर कभी।

नीलू कहती थी 'मैं घर बना ... हामी ता भरो। अ... हामी नही भर सकते तो मुझे ... डी० आ० ...

। कमरा

से छीन लाना ।" गुलचौहान जोर से हस पड़ा था। मैं न मिर्जा था, न राभा।

और आज बहुत बरस बीत गए हैं, मैं इतना साहस नहीं जुटा सका कि उसे किसी अफसर के पास से छीन लू। मैं नही जानता वह कहा है ? मुझे नही पता वह किस चोटी के पत्थरो से लगकर "नीलम" हो गई। मुझे तो सिर्फ आखो के नीलम की पहचान थी, पत्थरो की नही। फिर पत्थरो को क्या पडी है कि वह मेरे बन जाए।

हा, इतना जरूर याद है उसने लिखा था "हम जैसा की दीवालिया अक्सर उदास हुआ करती हैं। आज की शाम बहुत उदास थी, बेहद बोझिल तुम उदास मत होना उदासी की बात दीवारो से कर लेना। रही पत्रो की बात—क्या तुम्हारी नज्मे या कहानिया मेरे नाम लिखे लम्बे पत्र न होंगे ।'

मैं दीवारो की ओर बहुत दर देखता रहा। मेरे सवेरे भी और मेरी सामे भी बीत जाती, पर यह घटना हो जाने के बहुत देर बाद भी मैं खामखाह भावुक हो जाता रहा मसलन १८ फरवरी १९७६ की उदास शाम मेरी डायरी के थोडे से खाली पन्नो पर सारी की सारी उतर आई थी 'पिछले दिनो से प्रीत नगर छोड कर चले जाने को जी कर रहा था, पर सोचता हू अगर कभी बाद मे नीलू की चिट्ठी आ गई तो किसे मिलेगी ?" इस कारण आज तक चुप हू उदास और अकेला हू। खैर यह मेरा निजी मामला है कमरे का नही। कमरे से घर तक का सफर किया जरूर है, पर पहुचा कहा ?

कमरा कमरा होता है चाहे प्रीत नगर का हो, सुरजीत पात्र का या हरनेक का या बीबा बलवत का। अजीब सकून जरूर

होता है। यही "सकून' सफर बन जाता है, कमरा तक का सफर ।

मेडिकल कालेज के हास्टल का १५ए, इस कमरे से केशा का नाम ऐसा जुडा हुआ था जसे रवीन्द्र के साथ विल्ला, नीलू से ठाकुर या किसी और से जसेवाल। यूनीवर्सिटियों के कमरे तीन सौ दो एफ तीन अट्ठारह या ई-३१ सब बाहा म लेने को तयार रहत। हा, यह जरूरी होता था कि शराब दूर से लानी पडती थी, और रात गए ठेकेदार म वासी तिवासी कच्ची पक्की रोटिया खानी पडती थी।

पात्र के कमरे से उसकी अपक्षा मैं ज्यादा जुडा हुआ था। यहा अक्सर मैं मुहरजीत, करमजीत, रविन्दर भटठल, पाली, अमिन्दर जीत, पोजियर आदि मित्र (जरूरी नही सारे हाजिर हो) बिटटू का इस तरह इन्तजार करते जसे—'रब वरगा आसरा तेरा ठेतीकितो बाहड मितरा* पास से मुहरजीत बोल उठता "हथ बातल हावे सालन नम्बर वनू बाकी ल आवागे यहा हम सारी यूनिवर्सिटी की मटर-गश्ती के बाद थके-टूटे हात शराब मिल ही जाती थी इस आशा को लेकर नहाते कपड धोत, और फटी पुरानी काई पान की लुग बाधकर मेहमानजी मेजबान कवि की कविता की दाद देते।

मेरे कमरे का भी यही दस्तूर रहा। यहा मेहमान कभी मेजबान बनकर आता और मेजबान को महमान बनाकर साथ ले जाता।

हरनेक के चौबारे जाध, मैं और दिलबीर खिडकी के रास्ते इस महाराजाआ के जहू की तासीर पहचान पहचान कर आग किया करते। वाने शराब बेचने वाले का याद करत—जिसका

*कही से जल्दी आ मित्र दोस्त तेरा खुदा जसा सहारा है।

अभी भी "कमरे" के सिर पर कोई चार सौ रुपया कर्ज होगा, पर कमरा" तो मालिकों का था हमें क्या ? लोगों के कमरे में पात्र की तरह भीड होती—कभी अमितोज का खूबसूरत साथ या कैम्पस मे "प्रभु जी कोई ऐसी जुगत करो दाम को कविता मुक्त करो।' विकास की प्रार्थना मे शामिल। भूषण के मजाक करते हुए भी बात मुहरजीत पर खतम की जायेगी—जिस रात उसने खुर्शीद की शाम को खरीदी हुई बनियानो में से एक दे दी थी और रात को खुर्शीद शराब के नशे में धुत दस के नोट की बजाय सौ का नोट ठेके वाले को दे आया था तो वह "दोस्तो ! मार डाला रे उच्चारण करके कमरे से निकल ठेके की ओर चला गया था —वह आज तक नहीं लौटा।

फिर धीरे धीरे कमरे ब्याहे जाते रहे और "घन" बनते गए। हमारी तलाश जारी रही। हम फिर पाली के अनब्याहे कमरे झेलते। मैं आज थका हारा सब ओर से ठुकराया हुआ लौटा हू। कमरे मे आकर बैड पर लेट गया हू। बिलकुल चुप चाप। किसी को नही बुलाऊगा। दीवार गूगी हैं। फ्रेम की हुई तस्वीरें धुधली हैं सब रिश्ते मुट्ठी म बन्द की हुई रेत की तरह झर गए है। मैं सामने देखता हू, कोई मुझ से कह रहा है 'मैं तुम्हारा कमरा हू, मुख्तार। मैं जानता था तुम आखिर एक दिन वापस आओगे। इसी कारण कितने ही बरस अधेरे मे बैठा म तुम्हारा इतजार करता रहा। तुम तो सिसकने लगे—सिसकी की गहराई मेरी समझ मे आ गई है। जिस तरह तुम गए थे, देख लो, म उसी तरह तुम्हे बाहो मे लेने को तयार हू, पर तुम अभी भी बीते हुए समय की ओर देखे जा रहे हो। छोडो यार ! बोतल मे मनी प्लाट लगा देने से मन मे

मनी प्लाट नही उग आता। जब नीलू यहा बैठी हुई काफी बना रही थी, तुमने उससे कहा था "नीलू! मुझे उस गमले मे लगा दो! जब सचमुच तुम जाओ तो मुझे गमले समेत ले जाना। मैं बहार और पतझड देख कर जी लगा प्लीज नीलू!" उस समय तुम्हारी सहेली नीलू 'घर" बना लेने का सपना बुना करती थी।"

'इस तरह मेरा अस्तित्व वही खत्म हो जाना था?"

"मैं तुम्हारी दोस्ती से इकार नही करता। मुझे तुमने हमेशा 'गुनाह करने का आसरा दिया। मैंने पहला और आखरी गुनाह यही किया था। मेहदी की महक सुहाग चूडिया की खनक का एहसास तुम्हारी गाद मे मुझे हुआ था। पर दास्त! तुम्हारा साथ मेरी प्राप्ति है, फिर मेरी हार को तुम अपनी हार क्यो नही समझते? मेरी अप्राप्ति मेरी होनी क्या नही मानते?"

"अच्छा, तुम्हारी हार समझ लू तुम्हारी दास्ती से भी इन-कार न करू, और तुम, जब तुम्हारे जी मे आए मुझे 'घर' के मामने जलील करते रहो। काई आए ता होल से बाहा म लेकर यह दा तुम इसे घर बना लो पर आज गुस्मा मत करना। आज तुम सब ओर से ठुकराए, हारे और थक हुए हा, पर तुम 'दोस्ती' जरूर समझ गए हा। और मुझे अकेला ही नही छाड कर गए, आठ साल से अपने गुट पर वध हुए तारा की चमक भी भूल गए। मैंने उस छोटी सी गुड्डी का जरूर 'घर वह सपन की छूट दी थी जिसने एक रात मेरी दीवार पर लिखा था "३१ मइ १९७८ अपने प्यारे और बहुत अच्छे भाई के पास २८ मइ स

३ जून तक कैम्प लगा था। अपने घर की दहलीज को चूमा। सारे घर का साथ लेकर बन्दर भाई का बहुत इन्तजार किया। अपने प्यार मे अकेली रही। अपना भाई बहिन के घर का एह सास जो था। निमल सरोवरो मे तैरते हुए फूल जसे भाई के लिये एक भाभी ले आओ । छोटी सिद्दू।" इसके आगे मैंन मिटा दिया था, क्योकि किसी और के घर बनान की बात जो आ गई थी। और लोगो को ता मैं कभी कभी घुसने ही न दू

ठीक है प्यारे ! चलो एक जाम अपने अपने बीते हुए समय के नाम पर हो जाए ?"

'नही बीते हुए समय के लिए कुछ नही किया जा सकता । जाम टकराऊगा आज के नाम पर। हा, तुम्हारी उसका क्या हाल है ? मैंने सुना था कि उसका ड्रामे या पोएट्री का पेपर तुम्हारे दोस्त के पास है। इसी यूनीवर्सिटी म चलाएगा चक्कर ? अकेलेपन, उदासी और तरस का रोना '

'चलो व्यथ मे मत बोले जाओ वह किसी दिन आए डाक्टर साहिब से कह देंगे। पर तुम फिर घर से चिढ जाओगे। ताने पर उतर कर कभी यारिया निभाई जाती हैं ?"

'नही नही, यार ! गुल चौहान का क्या हाल है ? उसे भी ले आओ। हम तीनो कभी इतने बरस एक साथ रहे थे। तुम खुद सदा एक दूसरे से आगे निकल जाने के प्रयत्न मे रहते थे। यह मुझे बहुत बढिया लगता था। एक अगर कुछ बढिया लिख लेता तो दूसरा सारा जोर लगाकर उसे काटने का जतन करता। इस कम्पटीशन म बडा आनन्द आता था। उसे ले आओ, अब तो वह भी "

'अब तुम क्यो बीते हुए समय के दलदल म उतर रहे हो ?

अगर मैं बूढा हो गया न, ता मेरी लडाई अजीत से ही रहेगी, तुम भी तब तक "

"क्या मैं दिनो दिन खडहर बनता जा रहा हू । मेरे पलस्तर गिर रहे है । खडहर पर निर्माण करने का किसी को चस्का नगाओ । तरस पदा करने के लिये आखिर मुझे ही तो बरतोग। पर मेरा खयाल मत करना '

"यार ! फिर तीना बोलिया पर आ गए हो। तुम्हार आसर से ही तो मैं जो कुछ हू, या बन सकने का भ्रम पाले वठा हू अगर तुम ही इस तरह करोगे तुम बताओ, मैंन पहली कहानी 'आखिरी चूडिया' की कती का सारा दद तुम्हारे माथ नही वाटा था क्या ? तुम्हारी गोद में ही मैंने भआ का थोडा-सा कज उतारने का जतन नही किया था क्या ? उस रात जब हम दाना जागे थे, बेचैन, तल्ख, और उस रात 'मिट्टी की चिडिया बनती रही थी । तुमने ही ता बूढे पेन्सनर की पीडा का मुझे अहसास करवाया था । तुम ही तो उसके लिये वडी महफिल से भी एक दो पग बचा लेते थे ताकि मैं उसे पिलाकर मलाया, आसाम के जगल मे एक बार फिर आजादी' के लिय भूख प्यास झेल कर लडन मरने को 'काले पहर का नाम दे सकू । और बताओ, मैं तुम्हारे बिना कभी अक्षर भी लिख सकता था ? हा, होस्त ! तुमने मेरा कितना कुछ सभाला है । हाथ जोडे हुए लडकी को बहुत प्यारी तस्वीर वह पलक पर टिके हुए आसू वाली लडकी उसी तरह फ्रेम मे से देख रही है । मेरी—दास्त लडकिया और मित्रो की धुधली पडती जा रही तस्वीरें उसी तरह सुरक्षित है। यह तुम ही कर सकते थे दास्त । बाकी यार ! तुमने ही ता मुझे और मेरे मित्रो को लिखे उनकी प्रेमिकाओं के पत्र सभाल कर

रखे हुए है। वह ठीक ही साचते थे वहा पत्र सुरक्षित रहगे। हा, और मेरे लिखे पत्र भी तो नीलू तुम्ह दे गई थी। कहती थी साथ भी ले जा नही सकती फाड भी नही सकती ।" शायद कभी मिलेंगे तो इन्ह पढेंगे। शायद इसके आगे नही। कितने प्यार यहा दफन हुए होंगे भला ?

'अच्छा यह इलजाम भी तुम्ह अपन कमर के सिर मढना था ? तुम्हारे प्यारा को तो मैंने फूला की तरह रखा। उस तस्वीर की ओर देखो। तुम्हार शायर दास्त की महबूबा नही थी ? और वह लिपिस्टिक वाले होंठो के निशाना की गवाही कैनडा वाली मित्र की नही मैं और क्या कहू आखिर तुम्हारा कमरा हू यार!'

एक बार फिर आआ, सार मेरे यारो! एक बार फिर आओ। महफ्लिा के लिए तरस गया हू हगामो का दौर चलाओ "तुम्हारे नाम—तुम्हार नाम ।" वाला नाच करन वाला पात्र अमिताज का 'मुखिया' कहना मोहनजीत का अगुआओ को मजार बनने का शाप दे जाना और देश के कई रग मेरी दीवारा को छूते रहे । कवल का सिफ बीयर पीना पाली और मुहरजीत दानो का दारू की तलाश मे जाना हरनेक का कविता सुनाते रहना, गारखी का लिखना , प्रमिंदर जीत का वक्र' समझना सब एक बार फिर हा!

देख ला, फिर बीते हुए समय को जीने की लालसा नही कर रहे हा क्या ?"

जीने क लिए, मेरे दोस्त! इससे ज्यादा करना पडता है—'

'जाओ आज वाली चिट्ठी पढो और उसे पकडो। उसे

साथ ले आना, लिखती जा है कि बातें करने को जी करता है तुम ता सो गए। मेरे बारे मे जो लिखना था। नींद तो आएगी ही। ठीक है, मुझे ता देना ही देना है कमरा जो हू। चुनिंदा किताबें नीलू की दी हुई "लस्ट फार लाइफ" "मून ऐंड दि सिक्स पैंस" "धरती सागर और सीपिया (हिन्दी)" "न आने वाला कल" सुरा से ली हुई 'बूढा और समुद्र' "डाक्टर देव" और अपनी 'जक लडन' "प्लेग" 'धुप्पे ना छाव' रसीदी टिकट' दूसरे किनारे की तलाश' "चलते फिरते ममखर 'सिद्धार्थ' "मेरी कहानी' मैंने सब सम्भाल कर रखी। मैं जानती हू, तुम इनसे उदासी लेते भी हो और देते भी हो । तुम तो सुपनो कि दुनिया मे खो गए हो। फिर कही वगुलों की जून मे न पड जाना! अच्छा आमीन!"

पालिश की खाली डिबिया की बनाई हुई तराजू गिर पडती ता कभी मिट्टी के रुपये—दियासलाई की खाली डिबिया के बनाए हुए रेडियो को धूल मिट्टी पर से उठाने ही लगा था कि किसी ने मुझे बालो से खीच कर उठाया। मेरे मिट्टी के रुपये, खाली डिबियें और खिलौने उसने सामने की दीवार पर फेंक मारे

नयी मा एक हाथ मे मुझे और दूसरे हाथ से ट्राइसिकल को घसीटते हुए नये घर की दहलीज तक ले गई, दहलीज पार करते ही याद आया—पुराने मकान के कोने मे बनाया हुआ घर जिसके चारो तरफ मैंने सरकडो की बाढ बनाई थी और सरकडे जोड जोड कर दरवाजा बनाया था ढिबरिया समेट कर कार बनाई थी, और मरुए के पत्ते तोड तोड कर पेड बनाये थे, टूटे हुए होल्डरो के खभे बनाए थे। पर कोई कदम दरवाजे से होकर न गुजरा कुछ निर्दय पैर अचानक छत के ऊपर से गिरे और सब कुछ रौद कर गुजर गए।

"यहा कुछ नही है भई गेहू का गोदाम है" कोई मुझे परे हटाकर ताला खोलने लगा।

"हम यहा कभी किरायेदार होते थे।'

पर दूसरा आदमी बिना सुने दरवाजा खोलकर भीतर जा चुका था।

जी किया—दौडकर जाऊ और उस कोने मे इटे इकट्ठी करके फिर घर घर खेलू और फिर अपने आप ही हसी आ गई।

और एक दिन सब कुछ को अलविदा कहकर अपने घिसे पुराने कपडे एक पुराने ट्रक मे रखकर चडीगढ जा पहुचा। एक कोठी की मोढ़िया के नीचे एक गदे से कोने मे रहने के लिये जगह

मिली। फट्टिया जोड-जोड कर दरवाजा बनाया, और अपने कमरे मे पहली रात गर्मियो के दिन थे, उवम और घुटन मे नीद कहा आती थी। गहरी रात मे कोई दगड-दगड सीढिया चढता तो लगता जैसे कोई मेरी छाती पर पाव रखकर गुजर रहा हो। नीद न आती तो कुछ न कुछ पढता रहता। सीलन और अधेरे के कारण छोटे छोटे काकरोच निकल कर इधर उधर घूमने लग। थका हारा बाहर की चारदीवारी के साथ लगे हुए खभे के नीचे आकर खडा हो जाता और रात का बीतते हुये सुनता। कभी गर्मी न सोने देती कभी भूख कभी काकरोच और प्राय अपना आप। घर म अपना आप फालतू प्रतीत होता था, तो अब कमरे मे बहुत अकेलापन। जी करता था कोई मुझे ढूढता ढूढता आ जाए और इसी सीली हुई अधेरी जगह से हाथ पकडकर बाहर ले आए और कहे "कहा थे, खोजते खोजते आखें थक गईं।" पर दरारो मे से बाहर देख देख कर मेरी अपनी उनीदी आखे पथरा गइ।

यूनिवर्सिटी मे मेरे पास इतने पसे नही होते थे कि मैं किसी को चाय पर साथ देने के लिये बुला सकता। एक रात को मैं और अमितोज सडक पर छिल्ली प्रामा गाते हुए अपने आप को खूबसूरत नगर मे शामिल समझ रहे थे जब एक पुलिस के सिपाही की घुडकी से हमारे सास रुक गए। पचम स पटाख इतने नीचे गिरे कि फिर कभी चडीगढ की चौडी रोशन सडको और पेडो को खूबसूरत नही कह सके। पन्द्रह सक्टर म पेडो के नीचे लगे हुए देवराज के ढाबे पर हमारा दोनो का एक हिसाब चलता था। और अब भी वहा से गुजरते हुए पैर चौंक जाते हैं जसे अब उसका बकाया देना हो।

कभी-कभी घर से मन आता। लगता यह कौन है जो मुझे बेटा कहता है। यह कौन है जो मुझे भाई कहता है। यह कसी ममता की साझेदारी है—? कभी मेरी अपनत्व की भूख इनकी आत्मा तक क्या नहीं पहुचती। हर शाम को जब खाने के लिये पाच दस पैसे खोजते हुए कभी आसू निकल आते तो लगता मेरी ममता की साझेदारी किसी के साथ नहीं है। लगता कोई बुजुर्ग मेरा बाप होने का स्वांग करता है। वह जब भी याद आता, उसका भारी हाथ हवा मे हिलते हुए कह रहा होता "अपनी मा के सामने बोलने का साहस करता है ?" और मैं किसी के भी सामने कुछ भी बोलने का साहस न कर सका। जब भी कभी अपने से बडे किसी आदमी के सामने पेश होता हूँ तो लगता हू कि शब्द खो जाते हैं—और उसके भारी हाथ को अपने चेहरे से टकराने की प्रतीक्षा करने लगता हू। मैं उसके किसी भी पत्र का उत्तर क्या लिखता, इतना भी नही लिख सका कि हमारा कोई रिश्ता नहीं है। बस सीली हुई सीढियो के अधेरे म दुबके हुए मैंने सारी भूखों को किताबो मे लपेट लिया और "म्यूरमाल" की उगली पकड कर चलने लगा।

'तुम्हें याद करके एक दिन हम बहुत ही हसे" पडोस की बुढिया औरत कह रही थी। "तुम्हारे जाने के बाद हमने इस लडकियो का स्टोर बना लिया, इसमे हमारी लडकिया भी पूरी न आ पाए और तुम ने दो बरस काट लिये।'

जी किया कोठरी का धू धू जला दू। इस मौन म कितनी खूबसूरत नज्में पडी थी। विदेशी पुस्तकों के पात्रो के साथ घटो बातो मे लगा रहता। दीवारो पर कितनी पक्तिया लिखी थीं। 'ए मन इज नथिंग ससस बट व्हाट ही मेक्स आफ हिमसेल्फ' चप्प

चप्पे पर नज्मे अंकित की थी। मोमबत्ती के उजाले मे लगता जैसे नज्मे दीवार पर तैर रही हो, छोटी छोटी नज्मो की नावें

"बड़ा गन्ध था। तुमने बेटा ! न जाने क्या कीर काटे बना बना कर दीवारें काली की थी।"

जी किया नाखूनो से खरोच कर उन अक्षरो को चूम ल जो मेरी आखो मे आज भी नावो की तरह तर रहे हैं। यह कौन होते हैं ?

"पर मैं कौन हू ? मैं तो इस कोने का किराया भी नही दे सका था।" लड़खड़ाते हुए कदमो से बाहर आया, जैसे जिस्म का एक हिस्सा उस अंधेरे कोने मे खो गया हो

नये बने होस्टल मे रिक्शा रुका। कमरे की चाभी लेकर अंधेरे किले जैसे हास्टल मे नम्बर तलाश करने लगा। दूसरी मंजिल पर एक कमरा खोला। खाली सुन-सपाट कमरे मे खड़े होकर एक लम्बा सास भरा —और खाली दीवारो की ओर बड़े मोह वाली नजरो से देखा —तभी क्लर्क बोला 'आपका कमरा बी ब्लाक मे है, ए ब्लाक मे नही।'

बी ब्लाक —कमरा खाली करने वाला अजीब से अंक और अक्षर बखेर गया था। छोटी छोटी फालतू चीजें बिखरी पड़ी थी। फटे पुराने समाचार पत्र शैम्पू की खाली शीशियां, फ्यूज हुए बल्ब जूतो का खाली डिब्बा पुराने ब्लेड, स्याही की खाली दवात और पत्रो के फटे हुए टुकड़े

अपने आप मे अपराधी सा महसूस किया जब तीन बरस बाद यही कुछ कमरे मे छोड कर हास्टल के बाहर आया, तो रिक्शा मे बठते हुए एक पल के लिये लगा जसे अभी मैंने सामान रिक्शा से उतारा ही न हो और तीन बरस जैसे जिन्दगी से

मनफी हो गए हो   तीन बरसो का हासिल ?

आधी रात के समय हम दाना अपने कमरे को लौटे   दिल्ली जस खामोशी का पहाड बन कर सो रही थी।

"तुम्हारे घर मे पानी पीने के लिये गिलास भी नही "

यह सामने बीअर की खाली बोतल ह "

"कोई प्लेट ?"

यह अखबार है '

हमने ढाब से लाई हुई रोटी अखबार बिछा कर उस पर रखी—ता लगा जसे मन के एक खाली कोने मे स्वरमडल जसा वृक्ष उग रहा हो—

और कुछ दिन बाद फिल्म इन्स्टीच्यूट मे ट्रेनिग क दौरान हमने प्रभात स्टूडिया के परले पार छोटी-सी पहाडी के चरणो म एक फ्लैट किराये पर ले लिया। मामान सिफ दा अटचीकेस और छाटे मोटे बतन थे—और आधा वेतन किराय म चला जाता था। पर ऐसा लगता था जसे जि दगी के कितने ही बरस हम इस घर के लिये भटक्ते रहे थे

और अब भी जब हम दोनो बातें करते है ता प्राय अपन सुपनो मे बसे हुए घर के बारे मे—छाटे छाटे खर्चों म जब सारी तनख्वाह निबट जाती है तब—मेर हाथा का क्म के दबा कर वह कहती है "मुझे कुछ भी नही चाहिए—मुझे टी वी सीवी माफा का शौक नही है। सिफ चादी की घटिया वाला पालना चाहिये अपनी बच्ची के लिए।"

मैं जब भी अपने नये घर की कल्पना करता हू ता उसका एक कोना पिघले कर अधेरा मीला हुआ सीढियो का कोना।

गुल चौहान (१९५०)

कमरे से घर और घर से कमरे तक की यात्रा में जब कमरा था, मैं उसमें घर तलाश करता रहा और जब घर था तब उसमें अपना खोया हुआ कमरा ढूंढता रहा।

वास्तव में मैं अपना जन्म १९५० में नहीं, १९७० में मानता हूं। क्योंकि उन २० वर्षों का कुछ भी प्रमाणित मेरे पास नहीं है जो इस लम्बे काल का आस्वा दवा बन सके। यद्यपि यह भी सच है जो मैं आज आप से कह रहा हूं उसका बहुत कुछ इन बीस वर्षों की भी जमा बाकी है, खैर

मेरा पहला कमरा मेरी और मुख्तार गिल की साझेदारी में था उसके बाद प्रीत नगर का कमरा, उसके बाद शरीफपुरा वाला, और अब यह जो इन कमरों के बाद भी है और पहले भी था—५८७ ईस्ट मोहन नगर। गेट पर मेरे पिता की नेम प्लेट के साथ लेटर-बक्स

कहीं से आता हूं तो सबसे पहले चिट्ठी देखता हूं, या अपने पांच बरस के बच्चे के शब्दों की प्रतीक्षा करता हूं—"गुल पापे कोई आया" ताकि जितनी जमीन ताल्स्ताय ने इंसान की जरूरत बताई थी कहीं उतनी ही मेरा नसीब न हो जाए

फिर से अपने पीहर के दरवाजे खिडकिया उस पहले अधिकार और गर्व से नहीं खाल सकती।

एक पाकिस्तान बनने के बाद जसे उसके बराबर कितने ही पाकिस्तान बना लेना मेरी आवश्यकता बन गई थी। ताकि गम टुकडा टुकडा बट जाए। सो मैंने उसी शहर म किराये पर कमरा ल लिया। बस्ती का नाम शरीफपुर था। पर मरा कमरा तिमजले मकान की बिचली मजिल मे था। नीचे मालिक मकान ऊपर कडक्टर। नीचे मालिक मकान की लडकी कोई बकवास जैसा गीत जोर जार से गा रही होती। और ऊपर कडक्टरो ने काई चालू लडकी कमरे मे घुमाई हुई होती दखने वाला कहता यह कमरा है या काठा ?

"कहा से आए हो? क्या आए हा? कहा चले हा?" मुझे काई पूछने वाला नही। यह मूख किस्म के सवाल जिनका जवाब आदमी आज तक नही ढूढ सका। घर था ता पट्टी म एक कवि सम्मेलन मे कविता पढकर आया था। नया नया लिखना शुरू किया था। कविता कुछ इस तरह थी कि लोग कहते है अखबार पढा करा, इसमे अपने देश और परदेश के समाचार होते है, पर मैंने दा घटे बबाद कर दिये यह छोटी सी खबर भी नही मिली कि हमारे घर मे कल रात खाना नही पका था। घर लौटा तो मेरा पिता पूरे के पूर दहशत बने हुए खडे थे। (उन्ह सी० आई० डी० के किसी रिपोटर ने बताया था), वह मेरा ही इतजार कर रह थे। कुत्ते के बच्चे! तू लोगो म कहता फिरता है घर मे खाना नही पकता जब तुझे खाने का मुर्ग मिलत हैं। क्या नही मिलता तुम लोगो को? निकल जा मेरे घर स और उठा अपना सामान।" और वह मरा सामान बाहर

फेंकने लगे 'यह जाता है तेरा गोर्की यह जाता है तेरा चेखव यह जाता है तेरा ' और किताब एक एक करके आगन म बिखर रही थी

और फिर वह रो रहे थ तू इसीलिय पदा हुआ था।" और—म सोच रहा था—मैं इसलिये तो पैदा नही हुआ था और फिर मैं प्रीत नगर आ गया था। सोचता हू एक कमरा है —विशाल हरी पृष्ठ भूमि म लटका हुआ, नीले रग का कमरा। एक आदमी इस कमरे मे दाखिल होता है। कुछ मिनट के बाद जब वह आदमी बाहर आता है तो वह आदमी वह नही होता अजीब तरह से बदल चुका है। किसी की एक टाग लम्बी हो जाती है, किसी की नाक बडी हो जाती है, किसी की एक आख उसके चेहरे पर फल जाती है।

वहीं से एक आवाज सुनाई देती है "मसजिद का मुअज्जिन रोज मरे, थानेदार की उम्र दराज करना

एक खामोश हरी स्पेस म लटकता हुआ नीला कमरा— मेरा कमरा जिसमे से गुजरने वाला मनुष्य वह नही रहता जो वह दाखिल हुआ था, बाहर निकलने वाले मनुष्य के बदले हुए रूप से मुझे भय भी आता है। सोचता हू यह मनुष्य इस नीले कमरे का विज्ञापन हो जाएगा ।

शायद यह कमरा भी मेरा नही है। इसम मेरे यारो के कमरे भी जीवित हैं। सोचता हू मुझे उस व्यक्ति की ही प्रतीक्षा है जो इस हरी स्पेस म लटके हुए कमरे से गुजरते हुए अपना पहला आकार उभार रख सके, बदल न जाए।

हितू (मेरा बच्चा) कहता गुल पाप गुब्बारे तो वही होते हैं। एक बेचने वाला आता है तो कहता है गैस के गुब्बारे

ले लो, दूसरा कहता है हवाई गुब्बारे ले लो।"

या जब वह मुझे रगो से "पापली पापलू" बन के दिखाएगा। "यह बहुत सुन्दर है इसे दीवार पर लगा दो।" या वह मेरी बाहु पर पडा है और कहानी सुनने की जिद करता है।

"एक खरगोश था, सवेरे उठता था, ब्रुश करता था, स्कूल जाता था, स्कूल जाकर पढ़ता था '

"पढकर क्या हुआ ?"

"बेटे पढ-पढ कर वह इजीनियर बन गया।

"इजीनियर क्या होता है ?"

"बेटे ? इजीनियर वह होते हैं जो सड़कें बनाते है, मशीनें बनाते है गाड़ियां बनाते हैं कार बनाते हैं "

"रगो से ?"

वह बीमार है। कुछ अजीब-सा बडबडा रहा है और तेज बुखार से तप रहा है।" "नही इसे कुछ नही हो जा रहा है।" मैं बार-बार अपना विश्वास पक्का करते हुए उसकी नब्ज देखता हू मैं जाग रहा हू कुछ गलत न हो जाए इससे डर रहा हू

टी० वी० चल रहा है। टिंकू मेरी गोदी में बैठा है। स्क्रीन पर एक बच्चा गा रहा है। मैं उसे उत्साहित करने के लिये कहता हू 'बेटे ! देखो कितना अच्छा गा रहा है। वह चुप है मैं कहता "बेटे ! देखो उसे सुनकर सुन्दर-सुन्दर लडकियां तालियां बजा रही हैं देखो।' वह फिर भी चुप है कोई प्रतिक्रिया नहीं। पर कुछ देर बाद वह पूछता है। 'पापा, इसकी मम्मी है ?

एक छोटी-सी दुनिया है, एक तलाक शुदा आदमी, एक बिना मा के वच्चे की। और उसमे—खामोशी है, इतजार है, सुपना है।

मुझे अपने कमरे से शिकायतें भी है। जसे कि डूबता हुआ सूरज ऊचे ऊचे मकानो के पीछे चोर की तरह छिप क्यो जाता है, सबके सामने समुद्र मे क्यो नही डूबता ? जसे कि, दरवाजा खटखटाने वाला व्यक्ति वह क्यों नही होता जिसका मुझे इतजार होता है ? जसे कि जब मैं चाहू यह बातें करे, कोई कहानी छेडे यह पत्थर क्यो हो जाता है ? जसे कि, मैं इसके लिये कुछ भी नया करू कुछ समय बाद अस्तित्व क्यो खो बैठता है ? जसे कि, जब भी मैं इसमे एक सलीका लाता हू, कुछ समय बाद यह स्टोर की सूरत क्या हो जाता है ?

बीबा बलवन्त के कमरे म लगी हुई खूबसूरत लडकियो की पेंटिग्ज के चौगिर्दे मे जो पल मैंने अकेले बिताए हैं, मैं चुरा लाना चाहता हू।

जो बारीक-सा पुल मैने अमता और इमरोज के बीच की दूरी मे चमकता हुआ देखा है मैं चाहता हू उसी जैसा एक पुल मेरी भी किस्मत बन जाए।

वसे तो यह भी सोच रखा है कि कोई भी कमरा हो, एक न एक दिन मुझे वहा से जरूर गोर्की, चेखव और अपनी कहानिया समेत जलावतन होना पडेगा या जलावतन कर दिया जाऊगा बस कही भी वस कभी भी, पता नही कहा—किस वक्त।

मन घटना चक्र म से मनफी होगा, और खामोश हरे शून्य म भटक जाएगा।

इससे पहले कि पैरो मे से जडें निकलकर मिट्टी से कोई माजिश करने लगें, आगे बढ चलना है। हसरत तो बहुत है एक पेड की तरह उगा जाय, सूरज का हरे रग म पेंट किया जाय हवा मे से काई खुशबू लेकर उसे कोई मशा दी जाय, धरती के आकषण का पूरा मान दिया जाय। परन जान क्या बन चुके कई पाकिस्तान किसी भी जमीन के टुकडे को अपना मुल्क नही ममझने देते ।

कश्मीर सिह पन्नू (१९५०)

कमरे का खयाल आते ही यू लगता है कि अभी कोई पक्का बिल नही है। साप की तरह केंचुली उतार कर कइ झाडिया म छोड आया हू, और फिर अतीत के प्रिज्म मे झाकते समय कई कमरे आखो के आगे घूम जाते ह। उलझन होती है कि कौन से कमरे के बारे मे लिखू ? पर कुछ न भूलने वाले कमरे याद मे से स्पष्ट होते हुए लिखने के लिये उकसाते हैं। सन १९५० मे नवम्बर की ३ तारीख को मुर्गे की बाग के लगभग दो-तीन घटे पहले दुनिया को देखने के लिये मैंने आखें खोली थी। होश सभालने पर मा न बताया था कि मैं ननिहाल मे एक अधेरी कोठरी म तब पैदा हुआ था जब उस काठरी की कच्ची दीवार को पिछवाडे की ओर से चार सेंध लगाने मे व्यस्त थे पर वह रोने की आवाज सुन कर रफूचक्कर हो गए। इसी अलौकिक घटना के कारण सवेरे नाना ने मोहल्ले मे लडडू बाटे थे और खुशी म भगडा नच वाया था। गाव के लोग कह रहे थे—अगर पहलवान मिया सिह के घर रात का दोहता न आया होता ता चार सब कुछ लूट-पाट कर ले जाते। तभी तो नाना भरी चढती जवानी की गल तियां हस कर माफ कर दिया करते थे। मैं मन ही मन उस कोठरी

अन्दर आ जाते तो किताब बन्द करने का मुझे बढ़िया बहाना मिल जाता। तभी तो वह पहाड़ों के पैरों में बना हुआ कमरा अच्छा लगता था जो मुझे पढ़ने से छुटकारा दिला देता था। १९६५ की भारत-पाक लड़ाई के दौरान ब्लैक आउट के समय मैंने अलग कमरे में मुंह सिर लपेट कर, छोटी बैटरी जलाकर, घर वालों से छिपा कर एक बार लड़ाई पर एक व्यंग लेख लिख कर अखबार को भेजा जिसे छपने पर अपनी कक्षा में गर्व से दिखाया, पर मां ने मुझे बेलन से पीटा था कि मैंने रात को रोशनी करके सब को मरवा देना था। इस मार का निशान अभी भी मेरी दाहिनी टांग पर है, और आज भी वह कमरा एक दाग के रूप में मेरे पास है। लड़ाई खत्म होने पर मैं अपने जद्दी गांव आ गया था। एक ही लम्बा कमरा था। मिट्टी के तेल की रोशनी में पढ़ने के लिए मुझे रसोई मिली हुई थी, जो मेरा कमरा भी थी क्योंकि कोर्स की किताबों का बस्ता पानी के घड़े के पास रखना पड़ता था। पढ़ते समय रसोई से जब किसी डिब्बे में से बड़ी स्वादिष्ट सी महक आती तो ड्राइंग की परकार उसका ताला खोलने के काम आती। दिये की रोशनी दीवार पर जलने और फिर बुझने से एक लड़की अन्दाजा लगा लेती थी कि मैं कब सोया। इस कमरे से मुझे इस कारण भी स्नेह था क्योंकि वह लड़की मुझमें आदर्श ढंग का सा इश्क करने लगी थी।

दसवीं के बाद आबकारी के दफ्तर में नौकरी लग गई। इसलिये उसी महकमे का एक कर्मचारी मेरा रूम मेट बन गया। उन दिनों मैं शराब को मुंह से न लगाता था। लेकिन वह और उसका एक मरियल-सा दोस्त मुफ्त की पीकर मस्त-मस्ती किया करते थे। हमारे कमरे में मेरे रूम मेट ने मोचना, कैंची, और

डौने बनाने वाला बुलवर्कर रखा हुआ था, जिसमे वह सेहत बनाता था। वह दूध लेकर अलग रख लेता था, जो कभी कभी सिफ बिल्ली के काम आता था। वह पन्द्रह-पन्द्रह दिन के बाद डौलो पर बाधे हुए धागा को देखा करता था कि उनसे कुछ निशान पडे है या नही। उसी कमरे मे मेरे रूम मेट न एक हसीन लडकी की अधनगी तस्वीर टागी हुई थी, जिसकी सुन्दरता मक्खियो न बिगाड दी थी। और साथ ही हनुमान की तस्वीर भी, जिसके सामन वह व्यायाम करन से पहले धूप जलाया करता था, न जाने क्या। उसी कमरे म डौलो के खोल टूटन के साथ-साथ लडकिया के सुपन भी टूटते थे। उसका मजनू दोस्त चूडियो के टुकडा को घूर कर देखता और फिर उन्हें अपनी जेब मे रखते हुए एक ठडा सास लेता—मुझे इस सब कुछ से कोई दिलचस्पी नही थी। जल्दी ही मैं उस माहौल को सलाम कर के चडीगढ आ गया। कमरे मे अकेले रहते हुए जब बल्ब की रोशनी दीवार पर पडती तो गाव के दिये वाली पट नाए मुझे उस लडकी की याद दिलाती। उसकी शहद से भी ज्यादा मीठी चिट्ठियो का पढ कर छाती स लगात हुए कई बार अकेला कमरे म पागला की तरह बातें करन लगता था। पर मेरे आदश सुपना पर उसकी बेवफाई ने ऐसा पानी डाला कि मुझे वह कमरा काटन आन लगा। मानसिक तौर पर मैं बहुत कुछ ऊट पटाग सोचता था। फिर मुझ पर एक सनक सवार हो गई। माग कर लिय हुए कमरो के दृश्यो का याद कर के अब भी मुझे अपन आप से नफरत होन लगती है। सिफ वही कमरा मैं जान बूझ कर कुछ समय के लिए लेता था जिसके दो दरवाज होते थे—एक को बाहर स ताला लगा कर दूसरे को अन्दर स

मिटकिनी लगा कर, निश्चित होकर कमरे को भोगता था। इस कमरे म हमारे सासो की, और चूडिया की खनक की आवाज दीवारें सुन लेती थी।

उन्ही दिनो हमारा सारा परिवार चडीगढ आ गया। फिर भी घर के प्राणिया के बीच रहते हुए, पिता की खुरदरी आवाज, छोटे बच्चा की चीख चिल्लाहट, बतनो का खनकना तडके के साथ आन वाली छीको के बीच छोटे-से कमरे के एक कोने मे एक हिलने वाली कुर्सी पर बठ कर पहले की तरह ही मैंने पढना लिखना जारी रखा। बाहर की ओर खुलन वाली खिडकी से जब मैं आकाश की ओर देखता तो उडान भरते हुए पछी मुझे अच्छे लगते। मैं इस कमरे मे अपने आपको गुलाम समझते हुए भी आधी आधी रात तक पढता और घर वालो की नींद खराब करता रहा। मैं अपनी मर्जी का ब्याह करवा कर अलग रहना चाहता था, जहा मेरी किताबें हो और वह तभी तो सगाई की बात पक्की होने पर उससे हम कर कहा था "आज के बाद तुम्हारी एक सौत नहो, बल्कि बहुत हागी। तब वह हैरान परे-शान उलझी उलझी मेरी ओर देखती रही थी। पर उसे उल-झन में से निकालने के लिये मैंने कहा था कमरे मे किताबें ही तुम्हारी सौतनें होंगी। पर ब्याह करवा कर कमरे को सजाने की जो कल्पना की थी वह वास्तविकता न बन सकी। सिर के ऑपरेशन के कारण राजेन्द्र अस्पताल पटियाला के कमरे में मेरी टागो को रस्सिया म बाधा गया ताकि मैं एडिया भी न रगड सकू और उस सर्जरी के डॉक्टर अजमेर सिंह न बहुत हल्के हाथ स आपरेशन करके मुझे मौत के मुह मे निकाल कर बाहर की दुनिया देखन के काबिल बनाया। जब स्वस्थ हो गया तो उस

डोने बनाने वाला बुलवर्कर रखा हुआ था, जिससे वह सेहत बनाता था। वह दूध लेकर अलग रख लेता था जो कभी कभी सिर्फ बिल्ली के काम आता था। वह पन्द्रह पन्द्रह दिन के बाद डोला पर बाधे हुए धागो को देखा करता था, कि उनसे कुछ निशान पडे है या नही। उसी कमरे मे मेरे रूम मेट ने एक हसीन लडकी की अधनगी तस्वीर टागी हुई थी जिसकी सुन्दरता मक्खियो ने बिगाड दी थी। और साथ ही हनुमान की तस्वीर भी, जिसके सामने वह व्यायाम करने से पहले धूप जलाया करता था, न जाने क्यो। उसी कमरे मे अडो के खोल टूटने के साथ-साथ लडकियो के सुपने भी टूटते थे। उसका मजनू दोस्त चूडियो के टुकडो को घूर कर देखता और फिर उन्हे अपनी जेब मे रखते हुए एक ठडा सास लेता—मुझे इस सब कुछ से कोई दिलचस्पी नही थी। जल्दी ही मैं उस माहौल को सलाम कर के चडीगढ आ गया। कमरे मे अकेले रहते हुए जब बल्ब की रोशनी दीवार पर पडती तो गाव के दिये वाली घटनाए मुझे उस लडकी की याद दिलाती। उसकी शहद से भी ज्यादा मीठी चिट्ठियो को पढ कर छाती से लगाते हुए कई बार अकेला कमरे मे पागलो की तरह बातें करने लगता था। पर मेरे आदर्श सुपनो पर उसकी बेवफाई ने ऐसा पानी डाला कि मुझे वह कमरा काट खाने लगा। मानसिक तौर पर मैं बहुत कुछ ऊट पटाग सोचता था। फिर मुझ पर एक सनक सवार हो गई। माग कर लिये हुए कमरो के दृश्यो को याद कर के अब भी मुझे अपने आप से नफरत होने लगती है। सिर्फ वही कमरा मैं जान बूझ कर कुछ समय के लिये लेता था जिनके दो दरवाजे होते थे—एक को बाहर से ताला लगा कर, दूसरे को अन्दर से

मिटकिनी लगा कर निश्चित होकर कमरे को भोगता था। इस कमरे मे हमारे सासो की और चूडिया की खनक की आवाज दीवारें सुन लेती थी।

उन्ही दिनो हमारा सारा परिवार चडीगढ आ गया। फिर भी घर के प्राणियो के बीच रहते हुए पिता की खुरदरी आवाज छोटे बच्चो की चीख चिल्लाहट बतनो का खनकना तडके के साथ आन वाली छीको के बीच छोटे-से कमरे क एक कोने मे एक हिलने वाली कुर्सी पर बठ कर पहले की तरह ही मैने पढना लिखना जारी रखा। बाहर की ओर खुलने वाली खिडकी से जब मैं आकाश की ओर देखता तो उडान भरत हुए पछी मुझे अच्छे लगते। मै इस कमरे मे अपने आपको गुलाम समझत हुए भी आधी आधी रात तक पढता और घर वालो की नीद खराब करता रहा। मैं अपनी मर्जी का ब्याह करवा कर अलग रहना चाहता था, जहा मेरी किताबें हो और वह तभी ता सगाई की बात पक्की होने पर उससे हस कर कहा था 'आज के बाद तुम्हारी एक सौत नही बल्कि बहुत होगी। तब वह हैरान परेशान उलझी उलझी मेरी ओर देखती रही थी। पर उसे उलझन मे से निकालने के लिये मैंने कहा था 'कमरे मे किताबे ही तुम्हारी सौतनें होगी।' पर ब्याह करवा कर कमरे को सजाने की जो कल्पना की थी वह वास्तविकता न बन सकी। सिर के ऐक्सीडेंट के कारण राजेन्द्र अस्पताल पटियाला के कमरे मे मेरी टागो को रस्सियो से बाधा गया ताकि मैं एडिया भी न रगड सकू और उस सजरी के डाक्टर अजमेर सिंह ने बहुत हल्के हाथ से आपरेशन करके मुझे मौत के मुह से निकाल कर बाहर की दुनिया देखने के काबिल बनाया। जब स्वस्थ हो गया तो उस

डाक्टर का धन्यवाद करने के लिये फिर अस्पताल गया, और उस कमरे को हसरत भरी नजरों से देखा जहां मेरा दूसरा जन्म हुआ था। वहां पड़ी हुई कई चीजों को छूआ। उस पानी की टोंटी पर ओक से पानी पिया क्योंकि बीमारी की हालत में न बोलने के कारण गूंगों की तरह उसी टोंटी की ओर पानी-पीने के लिये इशारा किया करता था। आते समय भी मैं उस कमरे को लौट-लौट कर स्नेह भरी निगाहों से देखता रहा था

वर्तमान रैन-बसेरा माहौल में नदी के किनारे, प्रकृति की गोद में होते हुए भी एक कम तीन माल की आयु होने पर भी कमरे का अपना कहने की बात नहीं कह सकता। मुझसे पहले इन कमरों में दो जने रहते थे, जिन्होंने यह कह कर मकान लिया था कि उनकी बीवियां अपने पीहर गई हुई हैं—वह कभी भी पीहर से नहीं आईं। और एक रात वह चारों से घर छोड़ने के समय महीने का किराया तो मार ही गए साथ ही पीतल की टोंटियां भी नलकों पर से उतार कर ले गये और इसका नतीजा यह हुआ कि पानी गुसल में समर की तरह निरंतर चलता रहा। इस मकान के कमरों में तरह तरह की तस्वीरें लगी होने के अलावा गुसलखाने में पाखानों के गुसलखानों की तरह बहुत कुछ अश्लील लिखा हुआ था जो बाद में हमने मिटाया। रहा सो तो यह दो कमरों का सेट है पर जो बीच की दीवार निकाल दी जाय तो इसका आकार एक साधारण कमरे से अधिक नहीं होगा। इसी कारण घर के मसाले-वसाले की टोकरे रखने के लिए पत्नी ने मेरी किताबों वाला रैक मैं जो लगा हुआ है, और किताबें एक थान में भर कर उसके ऊपर बना टांड लिया है। जब मुझे किसी किताब की जरूरत पड़ती है तो बड़ी दिक्कत

होती है। रोशनदान के तरेड खाए हुए शीशे मे से जब बरसात का पानी जब टपाटप कमरे की दीवार के साथ बहता हुआ नीचे किताबो तक आता है तो हम दोनो किताबो को पलग पर बिखरते हुए बडे अजीब लगते हैं। धूप निकलने पर आगन में किताबो को सुखाने के लिए जब चारपाइयो पर बिछाते हैं तो वह किसी प्रदर्शनी से कम नही लगती है। सवेरे जब अखबार पढ़ने मे व्यस्त होता हू तो दूसरे कमरे मे धूप जलाकर मेरे लडके सन्नी से उसकी मा माथा भुकाने के लिय कहती है वह मुझसे साथ ही इशारे से उसे मेरे लिये भी कहती है और प्रणाम करने के लिये तोतली बोली मे कहता है। मैं धर्म का दिल से न मानते हुए भी तस्वीर के आगे पत्नी को खुश रखने के लिय अनमना सा पटका लपेटे हुये सिर को भुका देता हू। जब कुछ लिख रहा होता हू तो मेरा लडका पन लेकर अजीब कील काटे बनाता है और जब जी भर जाता है पन वापस कर देता है। जितनी देर तक वह "लिखन" मे व्यस्त रहता है मैं अपनी श्रीमती की ओर, अगर वह घर के काम-काज से निवत्ति है, रुई के फूल बनाकर कटीली झाडियोपर टाकने का प्लाई पर सजावट के लिये किश्ती बनाने मे व्यस्त होती है—उसकी ओर देखकर खुश हो रहा होता हू और सजावटी चीजो की प्रशसा करता हू। जब सन्नी और उसकी मा सो जाती हैं, तब मैं स्वतन्त्र होकर उल्टा-सीधा लेट कर पढता हू। मेरे दाए बाए किताबें बिखरी रहती है। जब ताजा होने के लिये मैं बाहर की ओर देखता हू, रग बिरगी कोई पतग उडती हुई नजर पड जाती है या किसी छत पर बाल सुखाती हुई कोई लडकी। जब किसी रचना को छपने की स्वीकृति की चिट्ठी आती है तो उस समय कमरे मे

बिखरी हुई चीजे भी अच्छी लगती हैं। चिटठी का कई बार पढता हू और कभी कभी बासुरी भी बजाता हू जिस पर एक ही गीत गाना सीखा है 'सौ साल पहले मुझे तुमसे प्यार था " कई बार इस सुरीली आवाज मे पडौसिया की शोर को आवाज भी मिल जाती है।

इस कमरे म रह कर भी तन मन धन स इसका कुछ नही सवार सकता। मेरा कल्पित कमरा मग-तृष्णा की तरह अस्तित्व म ही नही आ रहा हे। बुजुर्गो की कही हुई बात याद आती रहती है कि सिर पर छत जरूर हाना चाहिए। पर अभी ता पक्के तौर पर किसी छत को अपनी कहने का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ हा खुला आसमान जरूर है। जब भी मेरा अपना घर हागा ता एक कमरे म खास तौर पर किताबे रखने के लिय शल्फ बनवाऊगा। लडीदार मोटे मनका वाली धारिया के अत मे घुघरू हाग जा दरवाजे म पर्दे की जगह लटकेंगे। तब अ दर बाहर जाने पर टुनकार का झुनझुना सा सगीत पैदा होगा। अब जब भी कभी मालिक मकान खाली करने के लिये आकर दरवाजा खटखटाता है तो दोना छाटे छाटे कमरे ऊपर और अजनबी लगने लगते हैं, और म ट्लैट देखने के लिये चल पडता हू। जब 'किराय के लिये खाली है" का बाड नही दिखाई देता ता सुदर कोठियो के डिजाइना की ओर दखकर सोचता हू कि क्या मरा भी इसी तरह का कोई घर होगा जहा चमन के अगूरा की बेल और गददीदार घास उगाऊगा और चढते सूरज की लाली म शबनम के मातियो की तरह आस चमकेगी। अपने उस कमर का कलात्मक ढग म सजाने की बात जब साच रहा हाता हू तो टोकरी मे पडा हुआ ताला मुझे चिढा रहा हाता है कि मैं भी

क्नि स्याला म शेखचिल्ली की तरह पडा हुआ हू। तभी कही दूर से लटकता हुआ गत्ता ऐसे लगता है कि उस घर वाला कमरा मेरा ही कमरा हागा। और मैं उस कमरे को लेने के लिय मालिक मकान को उढिया फिकरे कहन क वास्ते शब्दा की तलाश करन लगता हू

कुलदीप जोशी (१६५२)

अलग कमर की तलब मुझे छुटपन मे ही महसूस हा गई थी। पर किराये के मकाना मे रहते हुए अलग कमरे की तलब बस तलब ही रह गई थी। सिफ बरको मे रहते हुए एक काठरी जिसे मालिक मकान ने बाद मे खालकर इस्तेमाल करन के लिय कहा था—किसी हद तक मैं उसे 'अपना' कमरा महसूस करता रहा हू। वह मेरा पढन का कमरा भी होता था, जहा एक बार मैंने एक पेड की टहनी की बन्दूक-नुमा सी चीज वनाई और मामन की दीवार पर टाग दी (यह मैंने एक शिकारी की जिन्दगी और उसके कमरे से प्रभावित होकर किया था)। बडे भाई ने वह 'बन्दूक' घुटन पर मारकर तोडते हुए मुझे भी अच्छा चाटा पिलाया था। और या फिर लडके वाला हमारा टूटा फूटा-सा चौबारा 'मेरा' कमरा बना रहा है—'उस' लिखे खतो की इबारत का हमराज।

सैतालीस की बबादी मैंन नही देखी पर उसका एहसास अपनी अट्ठाइस बरस की उम्र म बहुत बार भागा है। बाप की नौकरी न बहुत जगहा की यात्रा करवाई। और हर नई जगह जान के समय मैं बाकी परिवार वाला से कुछ ज्यादा ही बुझा

हुआ-सा हो जाता था। ऐसा लगता था जसे हम उजड रहे हो। मेरे भीतर उस 'उजडने को सहन करने की सामथ्य बिल्कुल नही रही थी और मैं 'उजडन' से कुछ दिन पहले अपने किसी रिश्तेदार के यहा जाकर ठहर जाया करता था। पर अब सबसे वडी उजडन मैंने लहुके से आते समय महसूस की। वहा मेरा बहुत कुछ था—मेरी वह' थी, यार 'पाला' था और मेरी 'वह' के घर के सामन वाला 'जोहड' था जहा मैं डगरो को नहलाने के लिय सिफ इस वास्त जाता था कि 'वह नजर आती रहे।

वहा से चलते समय मैं बहुत रोया। डगरो को हाकते हुए कच्चे रास्तो स होता हुआ जब मैं तरनतारन पहुचा था तो बुखार से मेरा बदन तप रहा था। वाद मे उधार दी हुई गाय लान के लिये मैं जब फिर उसी गाव पहुचा तो भीतरी घाव हरा हो गया। तब मैंने जिन्दगी मे पहली बार शराब पी थी, जी भर कर। चीखें मार मार कर राया था। 'अपने' चौबारे पर चढकर वहमब कुछ तलाश करता रहा था जो यहा रहते हुए कभी हुआ करता था।

तरनतारन मे रहते हुए मुझे अलग कमरे की तलब बडी शिददत से महसूस हुई। यहा मैंने घर वाला से उलझ कर अपना अलग कमरा ले लिया था जो मेरी जिन्दगी के कई बरस तक मरी जायदाद वना रहा। इस कमर ने एलिअन जैसे साथी का साथ भी भुगता, जसबीर भुल्लर के बोल भी सुन, जगजीत आहूजा के लडखडाते हुए पावो की चाल भी देखी सुरजीत (मजिस्ट्रेट), बलवीर, कृपन सोज, और सुनील अबरोल की खनकती हुई हसी को भी सुना। कुछ पल का साथ गुल चौहान का भी जिया।

हैरानी की बात है कि मैं उस गुफा-नुमा कमरे से कसे जुडा रहा हू। टूटने के समय का खडका तो अब भी मन के किसी कोन म गूज रहा है। यह कमरा हमारे दास्त हरबस नागी का था, जिसने हमारी हालत को जानते हुए बहुत थोडे से किराये पर हमे 'बख्श दिया था इस कमरे से इतनी बुरी तरह जुड गया था कि इसे छोडने का जी नही चाहता था मुझे याद है—मैं कमरा नही छोड रहा था, कि नागी ने सारी दास्ती को छीके पर टाग कर ताला तोड कर कमरे का 'कब्जा ले लिया था। आखरी महीने का किराया अभी भी मेरे सिर है। कमर का मेरा कीमती' सामान शायद अभी भी नागी के घर के किसी कोने मे रुल रहा होगा।

कमरे मे मैं पहले अकेले रहता था, अपनी सल्तनत का एक मात्र बादशाह। फिर हम दा हो गए—मैं और ऐलिअन—एक सी मन स्थिति के सहयागी। फिर तो कमरा जैसे हुजूम बना रहा। जिसे कही कोई ठहरने की जगह न मिलती वह आकर मेरे कमरे म टिक जाता था।

कमरे मे क्या था? बाहरी आखो को लगता था—जैसे कमरे मे कुछ नही था। पर मैं जानता हू—कमरा सब कुछ से भरपूर था, हमारे मन की तरह। कमरे के बाहरी दरवाजे से प्रवेश करने पर ऐसा लगता था जसे किसी गुफा में उतर रह हो। फिर आगे नलका था और नलके से लगा हुआ, इटें रखकर बनाया हुआ चूल्हा जो चाय बनाने या ऐश करने के लिये मास मुर्गा भूनने के समय महकता था। एक कोने में खाली सिगरटा की डिब्बिया, रददी अखबारा के टुकडे नि दे की दुकान से लाए हुए छाला के खाली कमारे जो सिगरेट पीते समय ऐश ट्रे का

काम देते थे—पडे हुए थे। नलके से लगा छत तक पहुचने वाला जीना था। जब जीने से छत पर चढते तो हमारे कदमा की आवाज से पडोसिया की छता पर बठी जवान लडकिया अपना लटा पटा सभाल दगड-दगड करती सीढिया उतर जाती थी, और हम शीशे के सामने खडे हाकर अपना मुह देखते हुए सोचते—'क्या सचमुच हम आवारा उचक्के लगते है?' उन लडकिया का डर दूर करने के लिय या यू कह लीजिये कि अपा आपको शरीफजादे जताने के लिये, हमने हर साधन उपयाग किया, पर सफल न हुए। अत को उनके सबसे छोटे भाई से छोटी छाटी बातें करके यह जाहिर करना शुरू कर दिया कि हम शरीफजादे हैं। कभी छत पर जाकर किसी छाटे बच्चे को उठाकर खिलाते रहते। इस तरह के प्रयत्ना से उन लडकियो का डर धीरे धीरे दूर हुआ। अब जब हम छत पर जाते तो वह 'दगड दगड' करती नीचे नहीं उतरती थी। यह हमारी अजीब-सी जीत थी जिसका एहसास हमारे चेहरा पर बहुत दिनों तक ठाठें मारता रहा था। मुझे याद है—पहली बार जब एलिअन साहस करके उनके छोट बच्चेको उठा लाया था तो पल भर मे छत पर बैठी सारी लडकियो के चेहरा पर एकदम जर्दी सी छा गई थी जैसे कोई उनका अबोध बालक चील उठाकर ले गई हो। कमरे म आकर हम देर रात तक 'अपने इस साहस पर उनके दिला की हालत पर हसते रह थे।

ऐलिअन ने एक सुबह उठते ही—अभी चाय भी नही पी थी कि एलान कर दिया कि पगडी को फिलहाल विदा कह दी' जाएगी और वह सीधा शेरे नाई की दूकान गया और हजामत करवा आया। इसके हमे कई फायदे भी हुए और कई नुकसान

भी। एक फायदा यह हुआ कि जिस फल वाले से ऐलिअन उधार फल फूट लाया करता था, उसने पसे मागने बन्द कर दिए (ऐलिअन का वह पहचान नही सका था)। एक नुक्सान यह हुआ कि हमारे 'रस्टिल' वाले 'ऐश' म विघ्न पड गया था। जहा से हम दोना रस्टिल खरीदते थे, उसके लिये अब हम दो नही रहे थे एक हा गए थे (चेहरो से एक जसे हा गए थे)। जब मैं अपना काटा लेने जाता तो वह कहता "भाई साहब! आप अभी ता ले कर गए हैं।' काफी सिर खपाई के बाद उसे समझाने म कामयाब हाता कि वह मैं नहीं था। इस तरह कई बार हम दानो जनो न डबल कोटा भी हासिल किया।

उस कमरे ने मुझे 'बहुत कुछ' नवाजा है, और इस नवाजिस के आगे मैंने हमेशा अपने आपको झुका हुआ महसूस किया है। कमरे म बठने के लिए बोरिया फाड कर बनाया हुआ तप्पड, और बिछाया हुआ सफेद खेस, जिसे धुलवाने की हमने कभी तकलीफ नहीं उठाई थी। कमरे म बिना पल्लो की अलमारी थी जिसे मैंने खाद के इश्तहार से सजाने की कोशिश की थी। अलमारी मे हमारी मिनो पत्रिका याकूत' की कापिया हाती थी जिन्हे कई बार बडी बेदर्दी से चाय बनाने के लिये जलाने के काम म ले आते थ। कमरे के कोनो मे ऐलिअन ने बाहर से कीकर की कटीली झाडिया लाकर सजाई था। फिर हमारे मित्र बलबीर ने (शायद तरस खाकर) अपने घर से एक चारपाई ला दी थी, और हम अपने आपका और भी स्वग मे महसूस करने लग थे।

एक अजीब सजोग हुआ। इन्ही दिनो घर से भी एक और रजाई पहुच गई थी। म और एलिअन एक ही चारपाई पर बेसुद गहरी नीद साया करते थ। एक रात हम दोनों रस्टिल का

डबल कोटा लेकर जागने का अभ्यास कर रहे थे कि मुझे चाय की तलब महसूस हुई। रात के दो बजे थे। बाहर बला की ठंड थी, और अन्दर हम अपनी अपनी रजाई में दुबके पड़े थे। इन्हीं दिनों हम एक हीटर मिल गया था, और ब्लैक बिजली जलाने का ढंग बताने वाला एक बिजली वाला भी। ऐलिअन उठने के डर से मुझसे चाय बनाने के लिये कह रहा था। आखिर मैं उठा, हीटर जलाया और उसे खींच कर चारपाई के पाये से लगा लिया चाय की पत्ती, चीनी, दूध एक साथ मुसीबत निबेड़ कर मैं मा गया। फिर हमें पता लगा जब रजाई के एक कोने से लपटें उठने लगीं। मैं ऊँघ में था ही—उस कोने को पलट कर दूसरी ओर कर लिया। इस तरह चारपाई को चारों तरफ से आग ने घेर लिया। रैंस्टिल का नशा इतना गहरा था कि मुझसे उठा नहीं जा रहा था। पूरा होश तब आया जब हम धड़ाम से नीचे आ गिरे। रजाई उठा कर बाहर नलके के नीचे रख दी—खूब नलका खोल कर हम एक बची हुई रजाई लेकर फर्श पर सो गए थे कि कोई एक घंटे के बाद पड़ौसियों की छत पर से शोर सुनाई दिया —बाहर पड़ी रजाई फिर जल रही थी और पड़ौसी धुआँ और आग देखकर ऊपर से शोर मचाए जा रहे थे। दिन चढ़ चुका था पर धुंध बहुत फैली हुई थी। मैं छत पर जाकर बड़ा ढीला-सा मुँह बना कर पड़ोसियों से कह रहा था "कोई बात नहीं हुई, जी हम चाय बना रहे थे। लोग चुप-चाप लौट गए।

तरन तारन वाले उस कमरे के बारे में तो अभी और भी बहुत कुछ है जो अनकहा रह गया है—रीटा नीलम, उषा की यादें हैं—अशोक चाल्डियन मुरिन्दर राव के कहकहे हैं—और, और भी बहुत कुछ।

अब मेरा अपना मकान है। उसमे एक मेरा अपना कमरा, एक मेरा और मेरी बीवी रावी के सोन का कमरा, एक मेरे पढन का कमरा, एक हमार अज मे बच्चे की किलकारिया की प्रतीक्षा करता हुआ कमरा। सामने अलमारी मे सजाई हुई किताबें हैं। एक दीवार पर टगी—एक मित्र की आर से तोफे के तौर पर दी हुई एक पेंटिंग। सुबह के सूरज को सलाम कर रही औरत के जुडे हुए हाथा की कलडरी तस्वीर।—और, और भी बहुत कुछ। पर वह कमरा और उसके साथ जुडा हुआ मेरा अपना आप,—मुझे लगता है, मैं अभी भी उस गुरु बाजार वाले कमरे के इद-गिद कही भटक रहा हू— सचमुच भटक रहा हू। पर सारी भटकन मे सुकून की कनी तब मिलती है—जब लहुके गाव वाला कमरा आखो के आगे आ खडा हा जाता है—जहा मेरी "वह थी' और जहा मेरे अगो म मेरी जिन्दगी की पहली आग सुलग उठी थी।

दर्शन मितवा १९५३

हर महीने की अट्ठारह तारीख कभी बीस, बाईस एक दो और कभी महीने की कोई तारीख और इन तारीखा का मेरे कमरे के साथ किन्ही दो देशो की सरहद जसा रिश्ता जुडा हुआ है। यही तारीखें हैं जो कमरे के मेरे अपने या बेगाने होने मे एक लकीर हैं। इन तारीखो के आने से कुछ दिन पहले ही मुझे ऐसा लगने लगता है जसे यह मेरा अपना कमरा नही है और आने वाले अगले महीने की इन तारीखा तक मेरे ऊपर यही एहसास भारी रहता है। कभी कभी महसूस करता हू जसे जब तक साल के कलडर मे से मैं इन सब तारीखो को निकाल नही देता तब तक कोई भी कमरा मेरा अपना नही हो सकता। मैं उस कमरे की छत के नीचे पडा हुआ भी बिना छत के महसूस करता हू जिसकी छत केवल आसमान हो। सर्दिया की ठिरा देने वाली राता म अपने हाथा से छापी हुई खद्दर की रजाई मे दुबके हुए भी मैं महसूस करता हू जसे किसी बडे शहर के फुटपाथ पर पडे नग धडगे ठड से सिकुडे, काले-कलूटे मे से मैं भी एक हू। मुझे रजाई गमाई नही दती। रात को नींद नही आती। कोई सुपना नही आता जसे मेरी उम्र मे से मेरी सुपना की उम्र के

चार बरस मनफी हो गए हो।

पर फिर भी पता नही कभी-कभी क्यो वह कमरा मुझे अपना-अपना लगता है, बिलकुल अपने हाथ से खरीदी हुई बनियान जैसा, जो मैंने पहनी हुई है। यह केवल तब ही लगता है जब सिगरट की तलब लगी हो, पास सिगरट न हो, न ही सिगरट के लायक जेब मे पसे हो कोई उधार न दे और अगर कही उस समय उस कमरे के किसी काने मे से एक आध बुझी हुई सिगरेट का टुकडा मुझे मिल जाए तो वह कमरा मुझे अपनी मा जैसा लगता है छुटपन मे जिसकी गोदी मे लेटे हुए मैं उसका दूध पी रहा होता, या जब मैं अपनी खिडकी खोलता हू तो वह लडकी (कोई भी हो) सामने छत पर बाल सुखाते हुए मेरी ओर देखती रहे, या फिर दिन ढले जब सारे मोहल्ले की लडकिया मेरे कमरे के आगे चर्खे डाल कर बारीक-बारीक तार कात रही हो और उनमे वह सबसे कम उम्र की भोली सी सुदर लडकी मेरी ओर देखकर नजरें नीची कर ले

और हा सच मेरी अपनी दाढी, इसकी भी उस कमरे से इतनी साझेदारी है जैसे यह मेरे मुह पर उगने की बजाय कमरे के मुह पर उग आई हो। छोटी सी गली म मुझे बहुत कम लाग जानते हैं। नाम भी कोई ही जानता है, जानते बस इक्का दुक्का पढे लिखे ही हैं या फिर खास करके डाकखाने वाला बाबू। बस गली के लडके बच्चे मुझे दाढी वाला भाई कह कर जानते हैं। मेरे कमरे म जाने के लिय मरे नाम की जरूरत नहीं, 'दाढी वाले का कमरा पूछ लें तो आपको लगेगा जसे सचमुच ही कमर के दाढी उग आइ हो।

पर मरे कमरे म क्या है ? यह बताना भी एक अजीब-सी

पहेली है जैसे किसी नगे आदमी से पूछ रहे हो, भई तुमने क्या पहना हुआ है और जवाब म वह ठड स सिकुडता हुआ टुक्र टुक्र आपके मुह की ओर देखने लगे। ऐसा मजाक ही तो मेरे कमरे मे आने वाले के साथ होता है—किराये का कमरा १० × १० साइज, फिर भी जरूरत से ज्यादा बडा (अगर कही वह किराया घटा दे तो मै ५ × ५ से ही काम चला लू), छोटी सी चारपाई, उस पर गदेला फिर चादर और फिर रजाई या खेस

और भला कमरे मे क्या होना चाहिए? एक कुर्सी—वह मकान मालिक की है—और मेज यह बडी हसी की बात है कि मेज की जगह मकान मालिक ने (पता नही मुझ पर तरस खाकर या फालतू होने के कारण) कढाई की मशीन का नीचे का मेज जैसा स्टैंड दे रखा है, पर फिर भी हर आने वाला हैरान होकर उस कमरे की दीवारो की ओर देखे जाता है—किसी नगे आदमी के कपडो की ओर देखने के समान! दीवारो पर बनाए टूटे फूटे स्कैच खिंचे हुए देख देख कर वह उधेडबुन मे पडा रहेगा पर मै जानता हू कि यह सब भुलावा है जो मैं अपने आपको दिये जा रहा हू और औरो को भी। वह बस अकेलेपन के और उकताहट के कुछ टुकडे हैं।

एक बासुरी पडी है। एक ढोलक भी। (ढोलक किसी की है और बासुरी मेरी जो मुझे किसी ने रखने के लिये दी थी।) बासुरी बजाते समय मुझे न कमरे का पता होता है, और न अपने आपे का। मेरा कमरा जैसे ऊपर उठना शुरु हो जाता है, हवा मे तरता है आसमानो म जा पहुचता है जहा बासुरी से निकलने वाली धुन सुन कर हीर अपने राझे से मिलने के लिये सरपट भाग पडती है। मैं यह सब कुछ देखता हू जीता

हू। उसी समय पता नही गली की कोई जवान जहान ल्डकी या आरत मेरे कमरे की दीवार से कान लगा कर गली के लडको का बासुरी सुनते हुए शिशकार देती है—(पता नही उन्हे चलता क्रके वह खुद कान लगा लगा कर सुनती हो!)

कमरे म एक कार्निस है जहा कुछ लडको की और मेरी अपनी तस्वीरें पडी हैं। एक सुई, धागे की रील और एक दो कमीज क बटन। एक बिलग है जिस पर मेरी लुगी है, निकर है, कमीज है। मेरी समझ मे नही आता और क्या-क्या गिनवाऊ। हा, सच, मेरे कमरे के अन्दर एक मरुस्थल है जहा मस्सी 'पुनू पुनू, ' पुकारते हुए जलकर राख हो गई थी। यह मरुस्थल मेरे कमरे की दीवार पर थोडी-सी जगह मे है जहा एक बार मैंने खालो बैठ कर पेन्सिल से कुछ कदमा के निशान बना कर वहा लिखा था—नाक पैर मलूक दे, मेहदी नाल शिगारे बालू रेन तपे विच थल दे रयौ जौ भुनन भटियारे।

अब जब भी उस मरुस्थल पर गौर से नजर डालता हू ता दूर कही जसे मेरा आपा चला जा रहा हो जलती हुई भूरी रेत पर नग परा के चिन्ह डालता हुआ और वह चिन्ह जस सस्सी के न होकर मेरे बन गये हो। यह मरुस्थल मरे पदा हाते ही मेरे पैरा के नीचे था और तब से अब तक उसी का सफर कर रहा हू। पता नही कब खत्म होगा यह सफर। और इस मरुस्थल का समेटे हुए यह कमरा यार दोस्तो के लिये ऐसा है जैसे किसी प्यासे हिरन का पानी का तालाब मिल गया हा!

इस हजारा अरबो मील लम्बे फले हुए मरुस्थल के बराबर एक आलमारी है। इसम की कुछ किताबें हैं। किसी समय यह काफी हा गई थी बढिया बढिया। पर बढिया बढिया किताबें

कमरे के एक कोने मे सुराही रखी है। मत्तर माडल। आज कल इसके दिन पूरे हो गए हैं। मिट्टी से भरी पडी है। जवानी म यह नहाने के काम म भी आती थी और पानी पीने के भी। गर्मियो म यार-दोस्तो के लिय यह मिनी फ्रिज के समान होती थी पास ही एक पीतल का गिलास रखा है जिसे बस उसकी सारी उम्र म एक या दो बार ही धोया है। पता नही उससे क्या लगाव है कि धोने को दिल ही नही करता, पर इसने सब तरह का स्वाद चखा है—पानी का, चाय का, शराब का दूध का और जब कभी गुरचरन चाहल भीखी मेरे कमरे मे आता है तो यह गिलास उसके प्यारे मित्रो जैसा साथ और गर्माई देता है। और कमरे म, बस और ऐसी कोई बात नही है। वैसे यार लोग यह जरूर कहते हैं कि दोस्त! तुम्हारे कमरे म क्या आ गए मक्के का हज कर लिया। पहले मुझे यह बडा भद्दा सा मजाक लगता था, पर जिस दिन से एक मित्र दीवार पर एक शेर लिख गया है मैं सब कुछ का भाव समझ गया हू— वही है मकजे कावा, वही राहे बुतखाना जहा दीवाने दो मिल कर सनम की बात करते है।

बस जैसा मेरा कमरे के बारे म तसव्वुर था, कमरा मिल गया, पर काश कि तारीख के कैलडर म से सारी तारीखें कम हो जाए। और इन तारीखो के कारण कभी कभी मुझे वह कच्ची कोठरी याद आ जाती है जिसमे मेरी भूआ ने मुझे पहली घूटी दी थी जिसकी कच्ची छत मे से कही-कही पछियो ने घोसले बना रखे थे, मह के दिनो म जिसकी छत पर पैर की एडी से छत मे मोघला हो जाने का डर रहता था जहा कि मैं अपनी मा से चिपटा पडा उसकी छातियो को दूध पीने के लिय टटोल रहा होता था—काश कभी वह कच्ची कोठरी और वह दिन लौट आए!